ISSN : 0373-1200

सितम्बर 2002

अप्रैल 1915 से प्रकाशित हिन्दी की प्रथम विज्ञान पत्रिका

मूल्य 9.00 रुपए

सी.एस.आई.आर. तथा डी.बी.टी. नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित
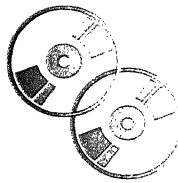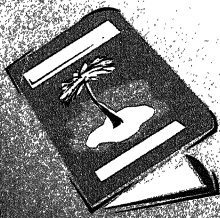
इक्कीसवीं सदी में डिजिटल पुस्तकालय
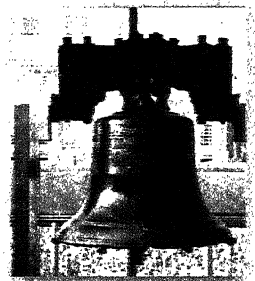
संक्षारण

गर्माती धरती : हिमनदियों को खतरा

मधुप गुनगुनाकर कह जाता

विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना : 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन : अप्रैल 1915
वर्ष : 88 अंक : 6
सितम्बर 2002

मूल्य
दसवार्षिक : 1,000 रुपये
त्रिवार्षिक : 300 रुपये
वार्षिक : 100 रुपये
यह प्रति : 9.00 रुपये

मुद्रक
नागरी प्रेस
91/186, अलोपी बाग, इलाहाबाद
फोन : 502935, 500068

आवरण, आन्तरिक सज्जा व टाइप सेटिंग
शादाब खालिद
79/65, सब्ज़ी मण्डी, इलाहाबाद
फोन : 651264

सम्पर्क
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद–211002
फोन : 460001 ई–मेल : vigyan1@sancharnet.in
वेबसाइट : www.webvigyan.com

विषय सूची

जीवाणु प्रेरित संक्षारण

✍ डॉ0 सिद्धनाथ उपाध्याय

1. संक्षारण

किसी धातु अथवा मिश्रधातु के अपने पर्यावरण के साथ ध्वंसात्मक भौतिक, रासायनिक व जैव रासायनिक क्रियाओं के कारण होने वाले विनाश को संक्षारण कहते हैं। इस प्रक्रिया के चलते हमारे रोजमर्रा के जीवन में काम आने वाले कई उपकरण (मोटर गाड़ी, लोहे की बनी वस्तुएँ, आदि) धीरे-धीरे छिद्रमय होकर या तो विरूपित हो जाते हैं अथवा अपनी उपयोगिता खो देते हैं। प्रकृति से निकले खनिज से धातु को प्राप्त करने के लिए जितनी ऊर्जा खर्च होती है लगभग उतनी ही ऊर्जा उस धातु के संक्षारण द्वारा पुनः प्राप्त की जा सकती है। सामान्यतया धातु अपनी प्राकृतिक अवस्था अथवा यथासंभव उससे मिलती जुलती अवस्था में वापस जाने की प्रवृत्ति प्रदर्शित करती है। इस प्रकार संक्षारण निष्कर्षणीय धातुकर्म का विपरीत कार्य है। यह एक विद्युतरासायनिक प्रक्रिया है। कंक्रीट, सेरामिक, प्लास्टिक आदि के क्षरण को भी संक्षारण की विस्तारित परिभाषा के दायरे में लाया जा सकता है परन्तु इन पदार्थों में किसी प्रकार की विद्युतरासायनिक प्रक्रिया नहीं होती है। संक्षारण विज्ञान के अन्तर्गत हम उन सभी कारकों व धात्विक प्रक्रियाओं का अध्ययन करते हैं जो संक्षारण के दौरान सम्पन्न होती हैं। संक्षारण अभियांत्रिकी के अन्तर्गत इस प्रक्रिया से होने वाली हानि को रोकने के लिए जो प्रयास किए जाते हैं अथवा जो अभिकल्प विकसित किए जा सकते हैं उनका अध्ययन किया जाता है। वैज्ञानिक अक्सर उन बातों का भी अध्ययन करते हैं जो व्यवहार में उपयोगी या संभव नहीं होती हैं जबकि, अभियांत्रिक अक्सर पूर्ण विकसित एवं पूर्ण परीक्षित विधियों का उपयोग करते हैं, अथवा नई विधि का विकास करते हैं। अक्सर उन्हें इस बात की चिंता नहीं रहती है कि उस विधि की सफलता के पीछे विज्ञान के किस मूल सिद्धान्त का हाथ है। आज आवश्यकता इस बात की है कि वैज्ञानिकों एवं अभियांत्रिकों के बीच वैवाहिक बन्धन सदृश सम्बन्ध स्थापित हो ताकि संक्षारण विज्ञान व अभियांत्रिकी का सम्यक् विकास हो सके।

चित्र–1

संक्षारण के प्रकार

संक्षारण कई प्रकार का हो सकता है–

---
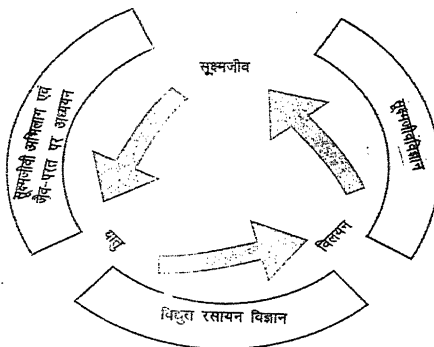
1 अगस्त 2002 को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में दिया गया लोकप्रिय जैव प्रौद्योगिकी व्याख्यान

क. समरूप संक्षारण, ख. गैल्वानिक संक्षारण, ग. विदरिका संक्षारण, घ. गर्त्त संक्षारण, ङ. पर्यावरण अभिप्रेरित भंजन, च. हाइड्रोजन कृत टूट फूट, छ. अन्तःकणीय संक्षारण, ज. अपरदन संक्षारण व झ. जीवाणुप्रेरित संक्षारण। जैव अवरुद्धन एवं जीवाणुप्रेरित संक्षारण सभी प्रकार के पदार्थों को प्रभावित करते हैं। एक आकलन के अनुसार पूरे विश्व में होने वाले धातुओं के संक्षारण से लगभग 50 प्रतिशत भाग में किसी न किसी अंश में जीवाणुप्रेरित संक्षारण का योगदान होता है। धातुओं और जीवाणुओं का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है तथा धातु संक्षारण में जीवाणुओं की अहम भूमिका है। सर्वशक्तिमान एवम् सर्वव्यापी जीवाणु जैविक क्रियाओं के दौरान विभिन्न प्रकार के रसायन उत्सर्जित करते हैं जो धातुओं को काफी नुकसान पहुँचाते हैं। इनकी इन जटिल क्रियाओं को सम्यक् रूप से जान पाना काफी दुष्कर है, फिर भी वैज्ञानिकों द्वारा इस दिशा में किए गए प्रयास सराहनीय हैं। जैव–संक्षारण वास्तव में एक बहुविधायी विषय है। इसके सम्यक् अध्ययन के लिए धातुकी, कार्बनिक व अकार्बनिक रसायन विज्ञान, विद्युत रसायन विज्ञान, सूक्ष्म जीवविज्ञान, अभियांत्रिकी, पृष्ठ–विज्ञान, आदि सभी के ज्ञान की आवश्यकता होती है। (चित्र 1)

2. जीवाणुप्रेरित संक्षारण

जब कार्बन स्टील, स्टेनलेस स्टील, एवं अल्युमिनियम युक्त मिश्रधातुएँ तथा ताँबा आदि स्थिर जल (पीएच : 4–9, तापमान 10–15 डिग्री सेंटीग्रेड) के सम्पर्क में लगातार रहते हैं तो संक्षारण की गति जीवाणु द्वारा प्रभावित होती है। बैक्टीरिया की कुछ खास किस्मों के लिए पीएच व तापमान की यह सीमा और अधिक हो सकती है।

जीवाणुप्रेरित संक्षारण नाभिकीय ऊर्जा संयंत्रों, रसायन उद्योग, धरातलीय एवं समुद्री तैल एवं गैस कूप, भूमिगत पाइप प्रणाली, जल परिष्करण उद्योग, अवजल एकत्रीकरण एवं संशोधन, राजमार्गों पर बने पुल, हवाई जहाजों के ईंधन की टंकी, धातुकर्म उद्योगों आदि सभी क्षेत्रों में होता है। जीवाणुप्रेरित संक्षारण के कारण धातु की सतह पर एक खास प्रकार का निक्षेप गुलिका के रूप में बनता है। इस निक्षेप को तोड़ने पर अक्सर उसके भीतर से जैविक अवपंक, जिसमें मैगनेटाइट और आयरन सल्फाइड उत्पन्न रहते हैं, मिलते हैं। इसमें अक्सर हाइड्रोजन सल्फाइड (H_2S) की सड़े अण्डे वाली गंध भी निकलती है। अगर निक्षेप की हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से क्रिया करायी जाए तो भी H_2S की गंध महसूस की जा सकती है। निक्षेप के नीचे वाली धातु की सतह चमकदार होती है परन्तु वायु के सम्पर्क में आने पर शीघ्र ही धूमिल हो जाती है तथा उस पर जंग लग जाता है।

जल जमाव वाली भूमि में दबी लोहे की नलिकाएँ अतिशीघ्र जीवाणुप्रेरित संक्षारण द्वारा प्रभावित हो जाती हैं। धातु की सतह और आसपास की मिट्टी में मुलायम, काले अवपंक के निक्षेप का पाया जाना आम बात है जो H_2S की गंध युक्त होता है। भूरे ढलवाँ लोहे के पाइपों या अन्य प्रकार के उपस्करों में, जो मिट्टी में दबे होते हैं, होने वाला ग्रेफाइट संक्षारण पाइप में से लोहे के जैव निक्षालन की प्रक्रिया के कारण होता है।

जीवाणुप्रेरित संक्षारण की रोकथाम सतह को नियमित रूप से साफ कर एवं जीवाणुनाशकों का उपयोग कर की जा सकती है। सतह को साफ किए बिना जीवाणुनाशकों का उपयोग लाभकर नहीं होगा क्योंकि निक्षेप की परत को पार कर जीवाणुनाशक रसायन अन्दर छिपे जीवाणुओं को मार सकने में सक्षम नहीं हो पाएगा। जल से साफ किए गए लोहे के पाइपों या अन्य वस्तुओं को पानी के पूर्णरूपेण सूखने के पश्चात् सतह को कपड़े से पोंछकर भण्डारित करने से जीवाणुप्रेरित संक्षारण की संभावना कम होती है।

ताँबे की मिश्रधातुएँ संक्षारण का प्रतिरोध करने में सक्षम होती हैं क्योंकि ताँबा और संक्षारण के उत्पाद दोनों ही जीवाणुनाशक का कार्य करते हैं। लेकिन कुछ बैक्टीरिया ताँबे की मिश्रधातुओं, को खास तौर से वे जिनमें लोहा अथवा मैंगनीज होता है, संक्षारित करने में योगदान कर सकते हैं।

कैथोडिक रक्षण के द्वारा जीवाणुप्रेरित संक्षारण को रोका जा सकता है। लेकिन ऐनोड से दूर वाले हिस्सों पर कैथोडिक विद्युतधारा के कम होने के कारण जीवाणुप्रेरित संक्षारण प्रभावी हो सकता है। अगर जैवीय

सक्रियता की संभावना है अथवा वह विद्यमान है तो सतह को भलीभाँति साफ कर और कैथोडिक विद्युत धारा को बढ़ा कर धातु की सतह की रक्षा की जा सकती है। तालिका 1 में जीवाणुप्रेरित संक्षारण में योगदान करने वाले कुछ जीवाणुओं, वे किस तापमान एवं किस पीएच पर अधिक क्षमता से कार्य करते हैं, तथा किस धातु व मिश्रधातु के संक्षारण को प्रभावित करते हैं आदि के बारे में सूचनाएँ दी गई हैं। इस तालिका से स्पष्ट है कि कुछ ही धातु व मिश्रधातुएँ जीवाणुप्रेरित संक्षारण से प्रभावित होती हैं। लोहा, स्टेनलेस स्टील एवं अल्युमिनियम आदि के जीवाणु प्रेरित संक्षारण के बारे में और अधिक जानकारी आगे आने वाले पृष्ठों में दी जा रही है।

3. लोहे पर वायविक बैक्टीरिया का प्रभाव

वायविक जीवाणु, संक्षारण में कई प्रकार से योगदान कर सकते हैं। ये (क) अवपंक का निर्माण (ख) सल्फाइड का आक्सीकरण (ग) लोहे का आक्सीकरण तथा (घ) अम्लीय सहउत्पादों (मेटाबोलाइट्स) का उत्पादन करते हैं। अवपंक जीवाणु द्वारा उत्सर्जित बहुलक है जो जीवाणु की वृद्धि के लिए उपयुक्त वातावरण के निर्माण और उस सतह से चिपकने में सहायक होता है। बैक्टीरिया, तन्तुमय फफूँद, शैवाल, प्रोटोजोआ, डायटम्स सभी अवपंक का निर्माण करते हैं। जो बैक्टीरिया लोहे या गंधक को आक्सीकृत करते हैं वे भी अवपंक बनाते हैं। जलयुक्त जैवीय अवरोधक अवपंक धातु की सतह को ढँक लेते हैं, विभेदी वातन सेल की रचना करते हैं, एवं अन्ततोगत्वा अवायविक वातावरण उपलब्ध कराकर अवायविक बैक्टीरिया की वृद्धि में सहायक होते हैं।

सल्फाइड आक्सीकारक बैक्टीरिया गंधकाम्ल का निर्माण करते हैं जो अत्यन्त प्रभावी संक्षारक है। सल्फेट की उपस्थिति में सल्फाइड अवकारक बैक्टीरिया अवपंक के उत्पादन द्वारा स्थानिक अवायविक परिवेश का निर्माण कर सल्फेट अवकारक बैक्टीरिया का पोषण करते हैं।

लोहे के आक्सीकारक बैक्टीरिया अधिक घुलनशील फेरस (Fe^{2+}) आयनों को फेरिक (Fe^{3+}) में बदल देते हैं जो कम घुलनशील होते हैं। फेरस (Fe^{2+}) आयन की कम सक्रियता ऐनोडिक अभिक्रिया की गति को बढ़ाती है।

$$Fe \rightarrow Fe^{2+} + 2e^-$$
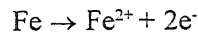
लोहे के आक्सीकरक जीवाणु ऐनोडिक स्थानों पर काफी मात्रा में Fe^{2+} को Fe^{3+} में परिवर्तित कर देते हैं। इस प्रक्रिया के चलते जलयुक्त फेरिक आक्साइड और उत्सर्जित जैवीय अवपंक की मिलीजुली अविलेय गुलिका का निर्माण होता है। इस प्रकार से बनी गुलिकाओं का आकार काफी बड़ा हो सकता है और कभी कभी ये नल के अन्दर के प्रवाह को भी बाधित कर सकती हैं। गुलिका या निक्षेप से ढका हिस्सा विभेदी वातन सेल में एनोड का कार्य करता है जिससे धातु की सतह और विद्युत सुचालक निक्षेप पर आक्सीजन का अवकरण होता है।

$$O_2 + H_2O + 4e^- \rightarrow 4OH^-$$
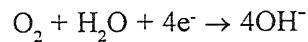
इस प्रकार बने आयनों की अधिक मात्रा के कारण $Fe(OH)_3$ या $Fe_2(CO_3)_3$ का अवक्षेपण होता है। इन गुलिकाओं को सल्फेट अवकारक बैक्टीरिया अपने निवास स्थल के रूप में प्रयोग करते हैं और निक्षेप में उपस्थित जैवीय पदार्थों का भोजन कर H_2S का निर्माण करते हैं। अगर जल उपलब्ध है तो क्लोराइड आयन एनोड क्षेत्र में आव्रजन करते हैं तथा वहाँ जल अपघटन के द्वारा वातावरण को और अधिक अम्लीय कर देते हैं। चित्र 2 में संभावित विद्युत रासायनिक एवं जैविक प्रक्रियाओं को दिखाया गया है।

इस प्रकार का संक्षारण सामान्य निक्षेप के नीचे होने वाले संक्षारण जैसा ही है, जीवाणु की उपस्थिति उसे केवल और अधिक प्रखर कर देती है।

चित्र–2
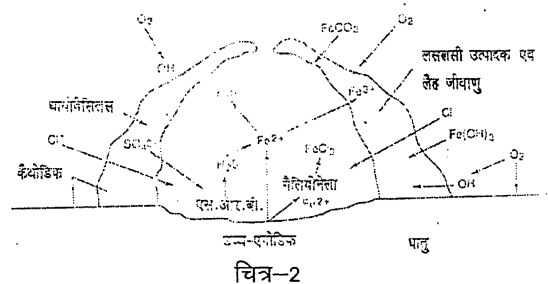
4. लोहे पर अवायविक बैक्टीरिया का प्रभाव

अल्प सांद्रतावाले लवणीय घोल और वायुरहित उदासीन जल में लोहे और कार्बन स्टील का संक्षारण सामान्यतया मन्द गति से होता है। इसका मूल कारण एकमात्र कैथोडिक अभिक्रिया–

$$2H_2O + 2e^- \rightarrow H_2 + 2OH^-$$
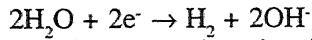
का अत्यन्त मंद गति से सम्पन्न होना है। लेकिन अवायविक बैक्टीरिया की उपस्थिति के कारण संतृप्त मृदा और वायुरहित जल में संक्षारण काफी तेज गति से होता है। अवायविक बैक्टीरिया अपनी ऊर्जा व आक्सीजन की आवयश्कता के लिए सल्फेट का अवकरण कर जल के साथ संक्षारक हाइड्रोजन सल्फाइड गैस बनाते हैं।

इस प्रकार के सल्फेट अवकारक बैक्टीरिया (SRB) अत्यन्त शातिर व खतरनाक जीवाणु हैं जो संक्षारण को बढ़ावा देते हैं। इन जीवाणुओं में से कई आक्सीजन की उपस्थिति में भी निष्क्रिय अवस्था में काफी समय तक जीवित रहते हैं और जैसे ही परिस्थितियाँ अनुकूल होती हैं, वे पुनः सक्रिय हो जाते हैं।

अवायविक सल्फेट अवकारक बैक्टीरिया किस प्रकार लोहे व स्टील के संक्षारण को प्रभावित करते है यह अभी भी भलीभांति ज्ञात नहीं है। हाल के शोधकार्यों से इस दिशा में कुछ महत्वपूर्ण जानकारियाँ अवश्य मिली हैं। संस्थापित सिद्धान्त के अनुसार कैथोडिक अवकरण अभिक्रिया–

$$2H^+ + 2e^- \rightarrow 2H + H_2$$
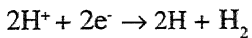
से प्राप्त नवजात हाइड्रोजन, सल्फेट के अवकरण से प्राप्त आक्सीजन से क्रिया करती है।

$$SO_4^{--} \rightarrow S^{--} + 4O$$
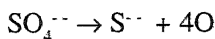
कुछ सल्फेट अवकारक बैक्टीरिया में उपस्थित हाइड्रोजेनेज एंजाइम, स्टील विद्युताग्र पर कैथोडिक विद्युतधारा को बढ़ाने में सहायक होकर संक्षारण की गति को तेज करते हैं। लेकिन कुछ शोधकार्यों से यह भी पाया गया है कि हाइड्रोजेनेज रहित बैक्टीरिया भी इतने ही आक्रामक हैं। हाल की खोजों से यह पता चला है कि संक्षारण द्वारा उत्पादित सल्फाइड एक तेज संक्षारक है। साथ ही यह भी देखा गया है कि सल्फाइड
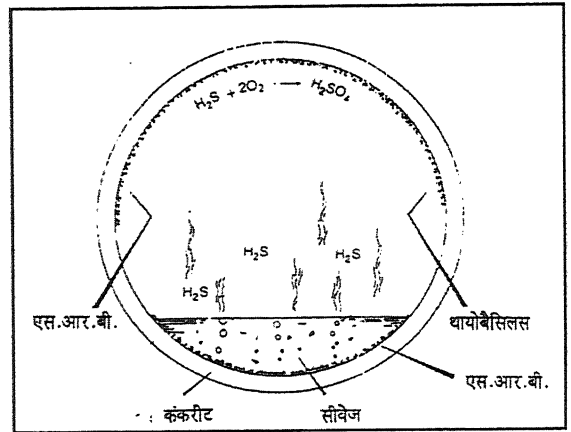
चित्र–3

की परत उदासीन जल में संक्षारण को रोकने का कार्य करता है। हाइड्रोजेनेज सल्फाइड परत पर से या उसके अन्दर से हाइड्रोजन को हटाने का कार्य करती है। वायविक–अवायविक परिस्थितियों की लगातार होने वाली आवृत्ति कभी कभी संक्षारण को बढ़ा देती है। सल्फेट अवकारक बैक्टीरिया घुलित आक्सीजन एवं अन्य आक्सीकारकों के कैथोडिक अवकरण के लिए घुलित व निक्षेपित सल्फाइड की सक्रियता को बनाए रखने में सहायक होते हैं। चित्र 3 में इस प्रकार की प्रक्रिया के चलते सीवर लाइन में होने वाले संक्षारण को दिखाया गया है।

5. स्टेनलेस स्टील का जीवाणुप्रेरित संक्षारण

बैक्टीरिया द्वारा उत्पादित अवपंक चिपचिपा होने के कारण सतह से चिपक जाता है तथा समुद्री जल अथवा मीठे जल की उपस्थिति में गर्त्त संक्षारण का कारण बनता है। यह देखा गया है कि अगर क्लोराइड आयन विद्यमान है तो जैवीय परत आक्सीजन के कैथोडिक अवकरण को उत्प्रेरित करती है और स्टेनलेस स्टील के संक्षारण विभव को बढ़ा कर गर्त संक्षारण के लिए आवश्यक क्रांतिक विद्युत विभव से अधिक विभव उत्पन्न कर देती है। अगर एक बार प्रारंभ हो जाए तो गर्त्त या विदरिका (या दरारदार) संक्षारण अत्यन्त सुगमता से अम्लीय जलअपघटन प्रक्रिया के कारण चलता रहता है। जैवीय अवपंक गर्त या विदरिका के मुहाने पर से

शेष पृष्ठ 14 पर..........

लिंग परीक्षण एवं निर्धारण

डॉ0 रमेश बाबू
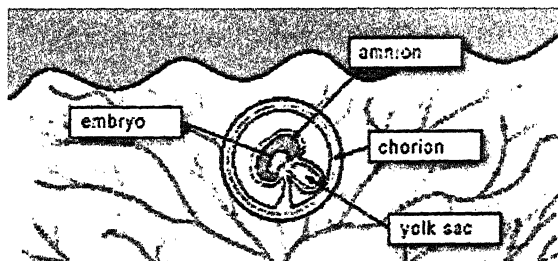
[illegible]

देश में हर साल लगभग 20 लाख बच्चों की कब्र कोख में ही इसलिए बना दी जाती है क्योंकि वे लड़कियाँ हैं। विश्व में ज्यादातर देशों में महिलाओं की संख्या पुरुषों से अधिक है। लेकिन भारत तीसरा ऐसा देश है जहाँ महिलाएँ पुरुषों से कम हैं। 1901 में भारत में 1000 पुरुषों की तुलना में महिलाओं की संख्या 972 थी जो 2001 में घटकर 933 रह गई है। ताजा आँकड़ों पर नजर डालें तो पता चलता है कि पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली राजस्थान, मध्य प्रदेश और गुजरात आदि राज्यों में महिलाओं का अनुपात तेजी से गिरा है।

भारत में लिंगानुपात

सं	जनगणना वर्ष	लिंगानुपात
1.	1901	972
2.	1911	964
3.	1921	955
4.	1931	950
5.	1941	945
6.	1951	946
7.	1961	941
8.	1971	930
9.	1981	934
10.	1991	927
11.	2001	933

भारत के विभिन्न राज्यों में जनगणना 2001 के आधार पर लिंगानुपात

क्र. सं0	राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश	लिंगानुपात (प्रति 1000 पुरुषों पर महिलाओं की संख्या)
1.	जम्मू कश्मीर	900
2.	हिमाचल प्रदेश	970
3.	पंजाब	874
4.	चंडीगढ़	773
5.	उत्तरांचल	964
6.	हरियाणा	861
7.	दिल्ली	821
8.	राजस्थान	922
9.	उत्तर प्रदेश	898
10.	बिहार	921
11.	सिक्किम	875
12.	अरुणाचल प्रदेश	901
13.	नागालैण्ड	909
14.	मणिपुर	978
15.	मिजोरम	938
16.	त्रिपुरा	950
17.	मेघालय	975
18.	असम	932
19.	पं0 बंगाल	934
20.	झारखंड	941
21.	उड़ीसा	972
22.	छत्तीसगढ़	990
23.	मध्य प्रदेश	920
24.	गुजरात	921
25.	दमन एवं दीव	709
26.	दादर एवं नागर हवेली	811
27.	महाराष्ट्र	922
28.	आन्ध्र प्रदेश	978
29.	कर्नाटक	964
30.	गोआ	960
31.	लक्षद्वीप	947
32.	केरल	1058
33.	तमिलनाडु	986
34.	पांडिचेरी	1001
35.	अंडमान एवं निकोबार द्वीप	846

देश में महिलाओं की संख्या में कमी का प्रमुख कारण कन्या भ्रूण हत्या है।

कन्या भ्रूण हत्या के प्रमुख कारण

1. कन्या भ्रूण हत्या का पूरे देश में एकमात्र सबसे बड़ा कारण दहेज है।

2. पुत्र मोह और लड़कियों से नफरत की भावना लोगों को भ्रूण का लिंग पता करने के लिए मजबूर करती है।

3. अधिकतर महिलाएं सिर्फ बेटे की माँ ही बनना चाहती है। इसी सोच के चलते वे कन्या भ्रूण को गर्भ में ही खत्म करना उचित मानती हैं।

4. ग्रामीण महिलाएँ ज्यादातर परिवार के दबाव में आकर परीक्षण और गर्भपात कराती हैं, क्योंकि वे पति पर निर्भर हैं और शिक्षित भी नहीं हैं।

5. परिवार में लड़के पैदा करने वाली महिला की ही इज्जत होती है।

6. ससुराल वालों द्वारा उसे प्रताड़ित न किया जाए, इसी डर से वह गर्भपात के लिए राजी हो जाती है।

भ्रूण लिंग परीक्षण की वैज्ञानिक विधियाँ

70 के दशक में शिशु के जेनेटिक (वंशानुगत) विकारों आदि का पता लगाने के उद्देश्य से एमनीयोसेन्टेसिस और सोनोग्राफी जैसी तकनीकों का आगमन हुआ। इन बाजारी ताकतों ने पुत्र कामना की भारतीय मानसिकता को खूब पहचाना। इन्हीं के जरिए

लिंग की जानकारी दी जाने लगी और अगर गर्भ में पल रहा भ्रूण कन्या है तो उसे मारा जाने लगा। इसकी प्रमुख विधियाँ हैं :

1. **एमनीयोसेन्टेसिस :** यह परीक्षण गर्भावस्था के 14 से 18 सप्ताह के बीच किया जाता है, जिसमें एक लम्बी सुई के द्वारा बच्चे की पानी की थैली से थोड़ा पानी जाँच के लिए लिया जाता है। गर्भस्थ शिशु के शरीर से गिरी विभिन्न प्रकार की कोशिकाओं का कल्चर करके अनेक प्रकार के परीक्षण किए जाते हैं।

2. **अल्ट्रासोनोग्राफी :** इस विधि से परीक्षण दो तरह से किया जाता है। 1. उदर द्वारा– यह परीक्षण 14 सप्ताह के आसपास किया जाता है। जैसे जैसे समय बढ़ता जाता है इस विधि की सफलता की दर भी बढ़ती जाती है। 2. योनि द्वारा– यह परीक्षण 13 सप्ताह के आसपास किया जाता है।

3. **कोरियान विलस बायोप्सी :** इस विधि का प्रयोग गर्भावस्था के 8 से 11 सप्ताह के बीच किया जाता है, जिसमें विकसित हो रहे भ्रूण के एक विशेष हिस्से से कुछ कोशिकाएँ जाँच के लिए एक विशेष प्रकार की सुई के द्वारा ली जाती हैं, जिसके द्वारा प्राप्त कोशिकाओं का कल्चर करना आवश्यक होता है। कल्चर की हुई कोशिकाओं में लिंग निर्धारण के अतिरिक्त अन्य जेनेटिक परीक्षण भी किए जाते हैं।

4. **प्री सिलेक्शन :** इस तकनीक के जरिए प्राइवेट क्लीनिक लाखों रुपए कमा रहे हैं। अमेरिका के वैज्ञानिकों ने फ्लोसाइटोमैटिक तरीके से पुरुष के एक्स क्रोमोसोम और वाई क्रोमोसोम वाली वीर्य कोशिकाओं को अलग करने की विधि ढूँढ ली है। लड़के की चाहत रखने वाले वाई क्रोमोसोम के बाहुल्य वाले वीर्य से स्त्री के डिम्ब को निषेचित करने से लड़का और एक्स क्रोमोसाम की बहुलता से लड़की होगी। भारत में यह तकनीक आ चुकी है।

भ्रूण लिंग निर्धारण

उत्पन्न सन्तान नर होगी अथवा मादा यह निर्भर करता है जनकों के लिंग–गुणसूत्रों के संयोग पर। मादा में XX तथा नर में XY लिंग गुणसूत्र होते हैं। X गुणसूत्र में मादा लिंग निर्धारण के लिए तथा Y गुणसूत्र में नर लिंग निर्धारण के लिए जीन्स उपस्थित माने जाते हैं।

नर में X तथा Y दो प्रकार के शुक्राणु बनते हैं। लगभग 50 प्रतिशत शुक्राणुओं में X गुणसूत्र तथा शेष 50 प्रतिशत शुक्राणुओं में Y गुणसूत्र होते हैं। X गुणसूत्र वाले शुक्राणु द्वारा अण्डाणु का निषेचन होने पर मादा सन्तान तथा Y गुणसूत्र वाले शुक्राणु से नर सन्तान बनती है। अतः बालिका को एक गुणसूत्र माता से तथा दूसरा X गुणसूत्र पिता से मिलता है, जबकि बालकों को X गुणसूत्र माता से तथा Y गुणसूत्र पिता से मिलता है।

पुरुषों की तुलना में महिलाओं की संख्या में जो कमी आई है उसका प्रमुख कारण कन्या भ्रूण हत्या है। अतः हम सभी को चाहिए कि चाहे पुत्र हो अथवा पुत्री, दोनों को समान दर्जा दें। गर्भावस्था के दौरान महिलाएँ समय समय पर पल रहे शिशु की जाँच जेनेटिक विकार हेतु अवश्य कराएं, लेकिन लिंग का परीक्षण कराकर गर्भपात या भ्रूण हत्या के बारे में कभी न सोचें अपितु इसे रोकें।

स्नातकोत्तर शिक्षक
(जीव विज्ञान)
जवाहर नवोदय विद्यालय
करीरा, जिला–महेन्द्रगढ़
(हरियाणा) - 123027

पेयजल विसंक्रमण का सम्पूर्ण विज्ञान

✍ रामचन्द्र मिश्र

रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती मानुस चून।।
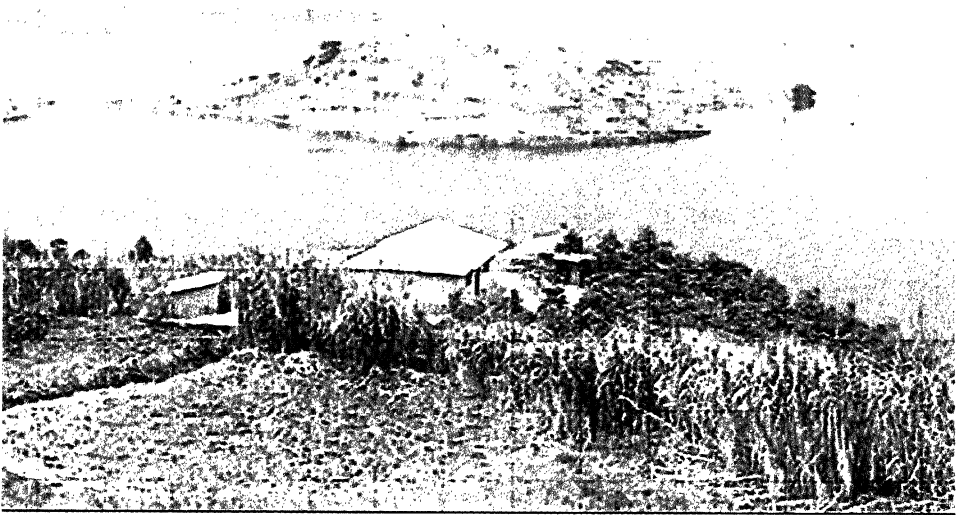
इक्कीसवीं सदी भीषण जल संकट के दौर से गुजर रही है। गत विश्व जल सम्मेलन में पेयजल को संकटग्रस्त संसाधन करार दिया गया है। पृथ्वी पर उपलब्ध कुल जलराशि का 97 प्रतिशत खारे पानी के रूप में है और शेष 3 प्रतिशत मीठे जल का 69 प्रतिशत के रूप में है। पेयजल का अंश सिर्फ 0.008 प्रतिशत है जो निरंतर बढ़ते हुए प्रदूषण, संदूषण एवं संक्रमण की चपेट में आता जा रहा है। आबादी में विस्फोट और जल संसाधनों के विकास हेतु आवश्यक विशाल धन के भारी अभाव के चलते सूखे कंठ सींचने के लिए जल इतना कम है कि पानी की हर बूंद का हिसाब रखना आवश्यक हो गया है। फलतः जल के क्षय या अपव्यय और संदूषण एवं संक्रमण को रोकना विज्ञान के लिए चुनौती है। पेयजल संकट से उत्पन्न संकट को तथाकथित 'जल तनाव सूचकांक' द्वारा नापने जोखने की बात भी चल पड़ी है और पेयजल विसंक्रमण का संपूर्ण विज्ञान नए सिरे से फोकस में है।

'सुजलाम् सुफलाम्' कहा जाने वाला और 'नदियों का देश' माना जाने वाले देश भारत में हिमपात सहित 4000 घन किलोमीटर वार्षिक वर्षा होती है जिसमें मौसमी वर्षा (जून से सितम्बर) का अंश 75 प्रतिशत है और इसका 90 प्रतिशत समुद्र में व्यर्थ बह जाता है। स्थलाकृति तथा अन्य संसाधनों के कारण उपभोज्य सतही जल की मात्रा वार्षिक पुनर्भरणीय भूजल संसाधनों (450 घन किमी) के अतिरिक्त 690 घन किमी ही है। अनुपयोगित 588 घन किमी उपभोज्य जल

तालिका–1 : जलजन्य बीमारियों की चार श्रेणियाँ एवं बचाव

श्रेणी	रोग	बचाव
1. जलजन्य संक्रमण	सन्निपात ज्वर, पांडुरोग, पेचिस आदि	जल गुणवत्ता में रोगाण्विक सुधार
2. जलप्रक्षालन जनित	स्कैबीज़, ट्रैकोमा आदि	शुद्ध जल का प्रचुर प्रयोग
3. जलाधारित संक्रमण	कृमिरोग गिनीवर्म	जलस्रोतों की सुरक्षा व जाँच
4. जलकीट जन्य रोग	मलेरिया, पीत ज्वर	गंदे जल के जमाव पर रोकथाम

को छोड़कर वर्तमान में 5.52 घन किमी उपभोज्य सतही व भूजल का प्रयोग हो रहा है जो भारत की विपुल आबादी के लिए अत्यल्प है। इस प्रकार 'सोने की चिड़िया वाले' देश को 45 प्रतिशत से भी अधिक आबादी को रोजना पेयजल की न्यूनतम आवश्यक 3 लीटर और घरेलू काम के वास्ते 40 लीटर की मात्रा भी उपलब्ध नहीं हो पा रही है। मीठे पेयजल का बचा खुचा अल्प संसाधन भी प्रदूषण एवं संक्रमण की चपेट में है और कहीं कहीं विसंक्रमण की व्यवस्था न होने से अफसोस होता है कि 'कंठ सूखे सींचने प्यासे गिलास मिलते हैं/चलो कहीं और पानी में मौत बिकती है।'

स्वीकार्य मानक

ऐसी दशा में जब अपर्याप्त जल संचय क्षमता एवं कुप्रबंध के कारण अधिकांश मीठा जल समुद्र में समा जाता है और दूसरी ओर औद्योगिक व घरेलू अपशिष्ट का 90 प्रतिशत से भी ज्यादा अधिक अनुपचारित अंश मीठे जल में प्रवेश कर जाता है तो पेयजल विसंक्रमण हेतु कमर कस लेना भारत की ऊँची प्राथमिकता बन जाती है। शुद्ध सुरक्षित पेयजल के मानक को निरंतर अद्यतन करना, प्रदूषण विसंक्रमण के कारण एवं निवारण हेतु बचाव की तकनीकें विकसित करना और जलजन्य बीमारियों की रोकथाम की प्रभावी योजना कार्यान्वियन में लाना, यानी पेयजल विसंक्रमण के संपूर्ण विज्ञान को प्रयोगशाला से घरों तक पहुँचाना यदि युद्ध स्तर पर नहीं किया जाता तो विकसित देश होने की ओर अग्रसर भारत पेयजल के संबंध में अविकसित देशों की तरह 'जलग्रसित आबादी' का कुयश पा सकता है।

आज हमारे देश में पेयजल के लिए अधिकांश जनता को प्रायः अनुपचारित नदी, झील, झरने आदि से प्राप्त जल तथा भूजल पर गुजारा करना पड़ रहा है तो ऐसे में स्वच्छ पेयजल के मान्य मानक को निर्धारित करना सहज नहीं है। भौगोलिक, सामाजिक और आर्थिक दशाओं को ध्यान में रखते हुए भौतिक दशा सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है। इसलिए कहा गया कि सार्वजनिक जल आपूर्ति का लक्ष्य जल की गुणवत्ता कायम रखना होना चाहिए ताकि जल रोगाणुरहित तथा मनपसंद हो और भोजन पकाने व घरेलू कामों के लिए उपयुक्त हो। अतः सुरक्षा सुरक्षित करने वाले कारक जल के मानक में अनिवार्य रखे गए हैं, जब कि जल की भौतिक दशा एवं रासायनिक गुणों के संबंध में लचीले कारक हैं। सामान्यतः पेयजल रंग, गंध, स्वाद और तलछट से मुक्त रूप में ही स्वीकार्य होता है लेकिन पानी की निरापद अवस्था मात्र ज्ञानेंद्रियों द्वारा नहीं बल्कि निर्धारित रासायनिक व भौतिक परीक्षणों द्वारा सुनिश्चित होती है।

भारत में पेयजल के मानक केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय तथा शहरी विकास मंत्रालय द्वारा लागू किए जाते हैं जो विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा जारी 'पेयजल गुणबत्ता विषयक निर्देश' को ध्यान में रखते हुए बनाए और अद्यतन किए जाते हैं। भारतीय मानक ब्यूरो द्वारा पेयजल पर जारी 'भारतीय मानक 10500–1983' भी उपलब्ध है जिसका अनुपालन अनिवार्य नहीं है। पेयजल के भौतिक, रासायनिक, जीवाण्विक, रोगाण्विक एवं रेडियोधर्मी गुणों में प्रमुख हैं: आविलता (टर्बिडिटी) 2.5 जे.टी.यू. अधितकम, रंग (प्लेटिनम–कोबाल्ट यूनिट) 5.0, स्वाद/गंध अप्रिय न हो, पी.एच. 7.0–8.5, घुलित

तालिका–2 : रोगजनक सूक्ष्मजीवों से उत्पन्न जलजन्य रोग

रोगजनक सूक्ष्मजीव (पैथोजेनिक)	रोग
1. जीवाणु (सालमोनेला, शिगेला, बिब्रिओ कोलेरा)	आंत्रज्वर (टाइफाइड), जठरांत्र शोथ, पेचिस हैजा
2. रोगाणु (इन्फेक्सस हेपाटाइटिस, पोलिओ वायरस, कोक्साइ)	पांडुरोग, पोलिओ, जठरांत्र शोथ
3. प्रोटोजोआ (ई.कोली, ई. हिस्टोलिका गिआर्डिआ)	अमीबा, पेचिस, गियार्डियता, जठरांत्र शोथ

ठोस 500 मिग्रा0 प्रति ली, फ्लोराइड व नाइट्रेट क्रमशः 1.0 व 4.5 मिग्रा0 प्रति ली0 कैल्शियम, मैग्नीशियम, लोहा और मैंगनीज, ताँबा व जस्ता, क्रमशः 75, 30, 0.1, 0.05 मिग्रा0 प्रति ली0। पारा सायनाइड, आर्सेनिक सीसा, जैसे विषाक्त पदार्थों की अनुपस्थिति, मलीय कोलीफार्म संख्या व ई कोलीफार्म संख्या क्रमशः शून्य तथा 10–30 के अंदर और कुल अल्फा/बीटा सक्रियता क्रमशः 3 व 30 पिकोक्यूरी प्रति लीटर।

जीवाण्विक/सूक्ष्माण्विक विसंक्रमण

जलजन्य बीमारियों की चार श्रेणियाँ हैं (तालिका 1) किंतु मलजल आदि द्वारा जल का जीवाण्विक संदूषण इसका एक प्रमुख कारण है। मलजल स्रोतों से संक्रमण के जरिए मुख्यतः यकृतशोथ (हेपाटाइटिस) और जठरांत्रशोथ (गैस्ट्रोइंटेरेसिस) फैलते हैं। आंत्र में रोगाणुओं के प्रवेश से अन्य बीमारियाँ भी फैलती हैं। इसमें मस्तिष्कशोथ (मेनिंजाइटिस), हृत्पेशीशोथ, (मायोकार्डिटिस), रैश, ज्वर आदि शामिल हैं। सन्निपात ज्वर, पांडुरोग, पेचिस आदि रोग ऐसे कस्बों व शहरों में आम बीमारियाँ हैं जहाँ जल में संक्रमण की सर्वाधिक संभावनाएँ मौजूद हैं। इसके अलावा जलप्रक्षालन जनित रोगों (स्कैबीज, ट्रैकोमा, गिनीवर्म) से देश की आबादी का बहुत बड़ा अंश ग्रसित है। रोगजनक सूक्ष्माण्विक कारकों से उत्पन्न रोग (तालिका 2) सर्वाधिक कष्टदायक हैं। अमीबा, पेचिस, टायफाइड और पैरा टाइफाइड वयस्कों के अलावा बच्चों और वृद्धजनों को सबसे ज्यादा परेशान करते हैं।

भारत जैसे बड़े आबादी वाले देश में जहाँ जल संक्रमण आम बात है और दूसरी ओर पेयजल स्रोतों के नियमित तथा विस्तृत परीक्षण की संभावना अत्यंत सीमित है, रोगाण्विक संक्रमण से जल राशियों का बचाव करना ही व्यावहारिक उपाय है। इनमें प्रमुख तीन उपाय हैं : स्रोत स्थान पर जल का विसंक्रमण रोकना, जल को पूर्ण उपचार द्वारा स्वच्छ कर आपूर्ति हेतु छोड़ना और पेयजल आपूर्ति के दौरान होने वाले विसंक्रमण को रोकना। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने निर्देश दिए हैं कि सभी पेयजल आपूर्ति प्रणालियों में क्लोरीन द्वारा पेयजल को समुचित रूप से उपचारित कर (0.5 मिलीग्राम क्लोरीन प्रति लीटर जल, 30 मिनट समय तक) और रोगाण्विक परीक्षा करने के बाद ही जल को आपूर्ति हेतु भेजा जाए।

सुलभ उपाय

उल्लेखनीय है कि भारत में मात्र मुंबई स्थित जल शोध संयंत्र में ही, जो एशिया का सबसे बड़ा संयंत्र है, पेयजल को पूर्णतः उपचारित किया जाता है ताकि उसकी रोगाण्विक, कठोरता, तलछट, रंग, गंध, स्वाद, अम्लीयता, क्षारीयता एवं घुलित आक्सीजन संबंधी निर्धारित गुणता प्राप्त की जा सके। यह दूसरी बात है कि आपूर्ति के दौरान जल संक्रमण की संभावित स्थितियों से निपटने के वास्ते अभी भी कई कदम उठाने बाकी हैं। ऐसी ही जल शोध प्रणाली देश के सभी स्थानों में क्यों न स्थापित की जाए ? पेयजल उच्च प्राथमिकता का क्षेत्र है। जल की वास्तविक कीमत वह नहीं है जो उपभोक्ता खपत की मात्रा के हिसाब से नगरपालिका को अदा करता है, बल्कि वह है जो

जलजन्य रोगों के उपचार हेतु खर्च करनी पड़ती है। फलतः आर्थिक रूप से और स्वास्थ्य की दृष्टि से पेयजल के पूर्ण उपचार का क्षेत्र उच्च प्राथमिकता रखता है। इस संबंध में योजना या आश्वासनों तथा वास्तविकता के बीच चौड़ी खाई है। इसके अलावा उपयोगकर्ता को जागरूक और प्रशिक्षित करना भी जरूरी है।

वाटर ट्रीटमेन्ट प्लान्ट

उपयोगकर्ता के स्तर पर पेयजल की स्वच्छता सुनिश्चित करने के वास्ते विसंक्रमण के सुलभ उपाय उपलब्ध कराना जलजन्य रोगों से बचाव की योजना की दूसरी सीढ़ी है। सौभाग्य से इस काम के लिए कई सुलभ विधियाँ एवं उपकरण विकसित किए गए हैं जिन्हें प्रयोगकर्ता तक पहुँचाना है। यदि यह कहें कि हर उपभोक्ता को अपने लिए पेयजल को स्वयं उपचारित करना आवश्यक होगा तो शायद कहा जा सकता है कि इस स्तर पर अध्यवसायी होने की उम्मीद रखना व्यावहारिक न होगा। किंतु पेयजल के बढ़ते हुए प्रदूषण, संक्रमण और जलजन्य रोगों के अबाध प्रकोप से निपटने के लिए कुछ प्रयास तो करना ही होगा जो ब्रेक का काम कर सके। खासकर जिस स्थान या जिस समय जल संक्रमण की विशेष स्थितियाँ मौजूद हों तो तुरंत विसंक्रमण के सुलभ उपाय करना तात्कालिक आवश्यकता बन जाती है। इसके लिए विविध आकारों में उपलब्ध क्लोरीन टिकिया या एमप्यूल का प्रयोग निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है।

जितना पेयजल जीवाणुरहित करना हो उसमें तालिका–3 के अनुसार क्लोरीन की टिकिया जो विभिन्न आकारों में उपलब्ध है डालें। जल्दी से घोलने के लिए टिकिया का चूर्ण बना लेना बेहतर होगा। एक दो मिनट तक पानी को हिलाते रहें और 30 मिनट तक ढक कर छोड़ दें। पूर्ण क्रिया की अवस्था में सिद्धांततः प्रति लीटर जल में 2 मिग्रा0 क्लोरीन डालना विसंक्रमण हेतु आवश्यक होगा, यद्यपि व्यावहारिक मात्रा इससे ज्यादा होनी चाहिए। (तालिका 3 देखें)
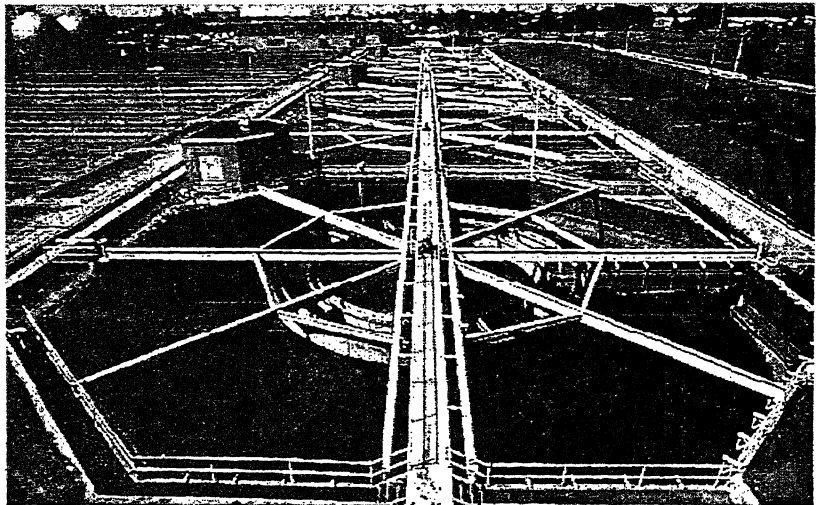
क्लोरीन विभिन्न यौगिकों के रूप में उपलब्ध है जिनसे उपलब्ध क्लोरीन का प्रतिशत यों है : क्लोरीन लाइम–33, उच्च हाइपोक्लोराइट– 60 से 70 सोडियम हाइपोक्लोराइट 12 से 15, कैल्शियम हाइपोक्लोराइट 70 जिसकी रासायनिक क्रिया निम्नांकित है :

$2CaCl_2 + 4H_2O = 2Ca(OH)_2 + 2HCl + 2HOCl$

$2HOCl = 2H^+ + 2OCl^-$ ($HOCl$ और OCl^- प्रमुख विसंक्रमक)
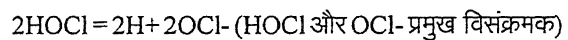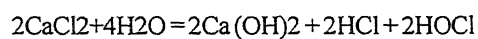
जल विसंक्रमण हेतु आयोडीन भी उपयोगी है किंतु एक लीटर जल हेतु क्लोरीन की आवश्यक 2–3 मिग्रा0 मात्रा के मुकाबले आयोडीन की 10–15 मिग्रा0 आवश्यक है और साथ ही घोल में इसका वाष्पीकरण अधिक होता है और यह तलछट युक्त तथा रंगीन जल में प्रभावी नहीं होती।

भारत में जल विसंक्रमण हेतु पोटैशियम परमैंगनेट का व्यापक रूप से प्रयोग होता रहा है किंतु यह सशक्त आक्सीकारक है तथा हैजा को छोड़कर अन्य रोगजनक सूक्ष्मजीवों के खिलाफ प्रभावी नहीं है। इसी प्रकार ओजोन की सीमाएँ होने से यह सुलभ विसंक्रमक नहीं है। पराबैंगनी तथा गामा विकिरण पर आधारित जल

तालिका–3 : तात्कालिक जल विसंक्रमण हेतु आवश्यक क्लोरीन का अनुपात

टिकिया की मात्रा ग्राम	टिकिया से उपलब्ध क्लोरीन, मिलीग्राम	विसंक्रमित जल, लीटर
2.5±0.125	300±60	240

विसंक्रमण की विधियाँ भी प्रचलित हुई हैं किंतु यह नाइट्रेट, सल्फेट, फेरस आयन तथा तलछट युक्त जल के लिए प्रभावी नहीं हैं।

पूर्ण विसंक्रमण

सदियों से उपयोगी, कसौटी पर खरा और गारंटी के साथ जल का को पूर्ण विसंक्रमित करने का तरीका पानी को पीने के पहले उबाल कर रखना है। इसके द्वारा जीवाण्विक, रोगाण्विक तथा सूक्ष्माण्विक सभी प्रकार के जल का विसंक्रमण होता है। हाँ, यह विधि घरेलू स्तर पर ही उपयुक्त है, यद्यपि इसमें अतिरिक्त ईंधन की खपत भी एक विचारणीय कारक है।

एक अस्पष्ट धारणा या प्रचार यह रहा है कि पूर्ण विसंक्रमण हेतु पानी को 15 मिनट तक उबाला जाए किंतु यह प्रयोगानुसार अनपेक्षित है। उबाल बिंदु पर पहुँचने के बाद पानी को 4 मिनट तक उबालने पर विसंक्रमण की क्रिया पूरी हो जाती है। पहाड़ी स्थानों पर अथवा जहाँ जल अपेक्षाकृत निम्न तापमान पर उबलता हो ऐसी जगहों पर पानी के पूर्ण विसंक्रमण हेतु 5 से 7 मिनट तक उबालना आवश्यक होगा।

भौतिक विधि द्वारा विसंक्रमण

सीधे जल स्रोतों, नदी, झील, बाँध आदि से प्राप्त जल को स्वच्छ करने के लिए तीन मुख्य क्रियाएँ– अवसादन, निस्यंदन और विसंक्रमण हैं जो नगर के जल संयंत्रों द्वारा की जाती हैं। इन संयंत्रों में क्लोरीन से रोगाणुमुक्त करने के बावजूद आपूर्ति एवं उपभोक्ता के स्तर पर जल का पुनः पुनः विसंक्रमण होता रहता है। घरों में सुरक्षित पेयजल हेतु पराबैंगनी छन्ना, आयोडीन छन्नों आदि का प्रचलन शहरों में चल पड़ा है जिनकी अपनी सीमाएँ व खामियाँ हैं। इनसे ज्यादा लोकप्रिय सेरामिक बेलन लगे जल छन्ने हैं। इनमें पोर्सलीन से बने खोखले बेलन (कैंडल) होते हैं जो जीवाणुओं को इनके सूक्ष्म छिद्रों में जाने से रोकते हैं। याद रहे कि यह छन्ने रोगाणुओं (वायरस) को रोकने या छानने में सक्षम नहीं हैं, सिर्फ ठोस अशुद्धियों और बैक्टीरिया को रोक पाते हैं।

सेरामिक बेलन प्रायः कुटीर/लघु उद्योग के स्तर पर बनाए जाते हैं, इनकी गुणता की जाँच निरंतर नहीं की जाती और इनकी क्षमता सदैव संदिग्धमय बनी रहती है। साथ ही बेलन को प्रथम उपयोग के बाद उबाल और घिस कर साफ करना पड़ता है जिसे गिने चुने अध्यवसायी उपभोक्ता ही कर पाते हैं। दो चार बार की सफाई के बाद छन्ने के छिद्र बड़े हो जाते हैं जिनसे बैक्टीरिया का रुकाव घट जाता है। भारतीय उपभोक्ता मार्गदर्शन संघ के अध्यक्ष (परीक्षण) की हैसियत से लेखक द्वारा इन छन्नों की कई बार जाँच की गई है। इन छन्नों से प्राप्त छने हुए पानी के नमूनों में विविध बैक्टीरिया ई.कोली 0–142, वी. कालेरी 0–180, एस.फेलिस 0–135, एस.टाइफी 0–144 और एस. शिगेला 0–127 की संख्याओं के बीच पाए गए हैं जो इन छन्नों को अस्वीकारने के लिए पर्याप्त हैं। कुछ सेरामिक बेलनों में चाँदी (सिल्वर क्लोराइड) मिलाई जाती है ताकि जीवाणुओं को छानने व नष्ट करने की क्षमता बढ़े। ये मंहगे होने के साथ ही पूर्ण विश्वसनीय नहीं पाए गए हैं।

खनिज जल

बाजार में बोलतबंद विसंक्रमित पेयजल दो श्रेणियों में उपलब्ध हैं, खनिज युक्त झरनों के उपचारित जल तथा विसंक्रमित सामान्य पेयजल। जाँच के बाद

तालिका–4 : जल छन्नों की क्षमता की तुलना

क्षमता/गुण	सेरामिक छन्ना	आयोडीन छन्ना	पराबैंगनी छन्ना	क्लोरीन उपचार
1. जीवाणुनाशक क्षमता	सामान्य	बेहतर	अच्छी	बेहतर
2. आक्सीकारक क्षमता	शून्य	अल्प	शून्य	ज्यादा
3. प्रदूषकों को छानने की क्षमता	शून्य	शून्य	शून्य	

इन दोनों प्रकार के जल में क्लोरीन के आयन पाए गए हैं और यह जीवाणु/रोगाणु मुक्त होते हैं। इनका पीएच मान 7.0 से 7.4, घुलित ठोस 83–115 मिग्रा0/लीटर, कठोरता 20–54 मिग्रा0 $CaCO_3$ और क्लोराइड 12–26 मिग्रा0/लीटर पाया गया है। सारांशतः यह नहीं साबित किया जा सकता है कि बोतलबंद खनिज जल पूर्णतः प्राकृतिक झरनों के जल हैं। इनमें सल्फेट की मात्रा प्रति लीटर 150 मिग्रा0 से ज्यादा होने पर मैग्नीशियम की उपस्थिति में यह रेचक साबित होते हैं। प्राकृतिक खनिज जल में 32 खनिज पाए जाते हैं। बाजारू खनिज जल प्रायः सामान्य पेयजल को पराबैंगनी छन्ने से विसंक्रमित कर उसमें कुछ खनिज घोले जाते हैं और कार्बोनेट रूप में चमकदार पारदर्शिता पैदा की जाती है। यह आबादी के एक न्यून वर्ग तक ही उपयोग में आ रहे हैं और करोड़ों लोगों को विसंक्रमित जल मुहैय्या कराने में इनका योगदान न्यूनतम है।

विसंक्रमण का वैदिक ज्ञान

ऋग्वेद में कहा गया है कि, 'आप शिवाः शं स्योना सुहवा भवंतु' यानी जल हमारे लिए शिव, कल्याण, सुख तथा सुंदर स्तुतिकर्ता हो। इसमें जल की शुद्धता का अर्थ सन्निहित है। अतः प्राचीन ज्ञान परंपरा में ताम्र पात्र पवित्र माने जाते थे और इनमें संचित जल रोगनाशक व स्वास्थ्यवर्धक माना जाता रहा है। इस मान्यता के अनुसार आज भी ताम्र पात्र में पेयजल रखने की परंपरा कहीं कहीं कायम है।

आधुनिक परीक्षणों से इस बात की पुष्टि होती है कि ताम्र में जीवाणुनाशक गुण है, अतः ताम्र पात्र में रखे गए पेयजल का अंशतः विसंक्रमण हो जाता है। ऐसे जल में ताँबे की उपस्थिति 0.01–0.05 मिग्रा0 प्रति लीटर पाई गई है। जल में ताँबे के साथ कार्बोनेट की उपस्थिति में ताँबे की क्रिया में परिवर्तन आते हैं और ताँबे द्वारा उदर, यकृत व गुर्दों में ऊतकों का क्षय हो सकता है। यदि पेयजल में 5 मिग्रा0/लीटर या अधिक ताँबा उपस्थित हो तो स्वाद कषाय या अप्रिय हो सकता है, यद्यपि इससे विषाक्तता की संभावना नहीं हो सकती क्योंकि ताँबा वमनकारी पदार्थ है।

......और संपूर्ण विज्ञान

पेयजल विसंक्रमण की रासायनिक, भौतिक एवं वैदिक विधियों का उल्लेख यहाँ किया जा चुका है और ऐसी शेष विधियों के संबंध में जानकारी जोड़ी जा सकती है। मसलन ओजोन द्वारा जल के विसंक्रमण से जठरांत्र रोगों के साथ पोलिओ के विषाणु भी नष्ट किए जा सकते हैं। शुष्क वायु में उच्च वोल्टता की विद्युत धारा से करोना डिस्चार्ज द्वारा ओजोन की क्रिया होती है अतः इसके लिए निरंतर विद्युत प्रवाह और ऊँची लागत की आवश्यकता होती है। यहाँ विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या इन्हीं विधियों द्वारा जल विसंक्रमण का संपूर्ण विज्ञान बनता है।

कितनी विडंबना की बात है कि जल विसंक्रमण विज्ञान की इतनी व्यापक जानकारी मौजूद होने के बावजूद जल संक्रमण बढ़ता ही जा रहा है और पवित्र गंगाजल को भी जिसकी सफाई ई.कोली संख्या औसतन 10,000 तक आ गई है, आचमन योग्य नहीं छोड़ा गया है। संभवतः वैज्ञानिक विधियों के समावेश के बगैर जल विसंक्रमण का मकसद आधा अधूरा रह जाएगा, जैसा

शेष पृष्ठ 23 पर

पृष्ठ 4 का शेष ....

है। यह संक्षारण या तो धातु वेल्ड के ऊपर होता है अथवा ऊष्मा प्रभावित क्षेत्र में होता है। इस प्रक्रिया के होने के कारण का सम्यक् ज्ञान अभी तक नहीं हो पाया है। धात्विक संरचना इसमें कोई योगदान करती है अथवा नहीं, यह भी अभी तक स्पष्ट नहीं है क्योंकि फेराइट और आस्टेनाइट दोनों पर ही वरणात्मक आक्रमण हो सकते हैं। यह भी देखा गया है कि जैव परत वेल्ड–मनिका या ऊष्मा–प्रभावित–क्षेत्र की धातु का विद्युत विभव गर्त्त संक्षारण के लिए आवश्यक विभव से बढ़ाकर अधिक कर देती है।

कुछ अन्य परीक्षणों से यह भी देखने में आया है कि जैवप्रेरित संक्षारण में वेल्ड का संक्षारण विभव परिवर्तित हो जाता है। ऐसी अवस्था में वेल्डधातु या ऊष्मा प्रभावित क्षेत्र आसपास की धातु के लिए एनोड का कार्य करते हैं और गैल्वानिक संक्षारण को प्रबल करते हैं। इस प्रकार की अवस्था में होने वाले जीवाणुप्रेरित संक्षारण की पूरी पूरी जानकारी अभी भी उपलब्ध नहीं है।

6. अन्य धातुओं का जीवाणुप्रेरित संक्षारण

जीवाणु उदासीन जल में अल्युमिनियम के संक्षारण को भी तीव्र कर सकते हैं। कुछ प्रकार के तन्तुमय फफूँद जो जल और ईंधन के अन्तरपृष्ठ पर निवास करते हैं तेल से प्राप्त हाइड्रोकार्बन को अम्लों में बदल देते हैं। ये अम्ल पानी में घुल कर धातु का संक्षारण करते हैं। ताँबे की मिश्रधातुएँ भी अपनी विषाक्तता के बाबजूद कुछ बैक्टीरियों द्वारा प्रभावित होती हैं। उदाहरणस्वरूप 'थायोबैसिलस थायोआक्सीडांस' लगभग 2 प्रतिशत ताँबे की मात्रा को सहन कर सकता है, अतएव उसका संक्षारण करा सकता है।

7. जैव झिल्ली व जैवीय अवरुद्धन

जैव झिल्ली जीवाणुओं की उस परत को कहते हैं जो किसी धातु, लकड़ी या पत्थर आदि की सतह पर उनके द्वारा स्वयं बनाए गए बहुलकीय पदार्थों के साथ जीवाणुओं के चिपकते जाने से बनती है। इसके निर्माण के लिए सतह को पोषक तत्व युक्त एक उचित माध्यम एवं जीवाणुओं दोनों के संसर्ग में एकसाथ आना पड़ता है। यह झिल्ली घरेलू जल की नलिका, तापीय संयंत्रों के शीतलन टावर, अवजल शोधन संयंत्र, दाँत आदि पर बनती है।

जीवाणु गोंद जैसे चिपचिपे एवं संक्षारण से उत्पन्न पदार्थों के सम्मिलित प्रभाव के फलस्वरूप चिपकते हैं। जैव झिल्ली में शायद ही कभी मात्र एक प्रकार के जीवाणु होते हैं। वस्तुतः इनके अन्दर जीवाणुओं का पूरा का पूरा समुदाय होता है। इनमें से कुछ सतह को संक्षारित करते हैं। इस प्रकार के संक्षारण को ही जैवप्रेरित संक्षारण कहते हैं। यह प्रक्रिया अगर एक बार प्रारंभ हो जाए तो अपने आप जारी रहती है। इसके कारण सतह खुरदरी और रासायनिक दृष्टि से चिपचिपी हो जाती है। कुछ बैक्टीरिया म्यूकोपालीसैकराइड बहुलकों के विस्तृत संजाल की रचना कर उसमें स्वयं तो चिपकते ही हैं अन्य पड़ोसी जीवाणुओं को भी चिपका लेते हैं। इस प्रकार से बनी जैव झिल्ली अत्यन्त मजबूत होती है और उसको हटाना काफी दुष्कर होता है। इस झिल्ली के कारण सतह खुरदरी हो जाती है। अगर जल के पाइप के अन्दर ऐसी झिल्ली बन जाए तो पानी पम्प करने के लिए ज्यादा बिजली खर्च करनी पड़ती है। सतह के ऊपर जैव झिल्ली बनने की इस प्रक्रिया को **जैव अवरुद्धन** कहते हैं। उन संयंत्रों में जहाँ उसी जल को एक बंद परिपथ के द्वारा बार–बार प्रवाहित किया जाता है जैव झिल्ली का बनना एक विशेष समस्या है। एक बार इसका बनना प्रारंभ हो जाने पर इसे रोक पाना काफी कठिन होता है। जो जीवाणु सतह से छूट कर अलग होते हैं पुनः वहाँ दुबारा आकर चिपक जाते हैं। इसकी रोकथाम केवल जीवाणुनाशकों के उचित प्रयोग द्वारा ही संभव है। इन जीवाणुनाशकों को द्रव में मिश्रित अथवा सतह पर लेपित किया जाता है। जैव झिल्ली ऐसे जल में जल्दी ही बनती है जो अविसंक्रमित होता है तथा जिसमें उचित पोषक तत्व होते हैं। अगर जल तीव्र गति से प्रवाहित होता है तो झिल्ली बनने की संभावना नहीं के बराबर होती है। किसी किसी अवस्था में अति शुद्ध जल में भी जैव झिल्ली बन सकती है।

तालिका–1 : जीवाणु प्रेरित संक्षारण में सक्षम कुछ जीवाणु

क्र. सं.	जीवाणु	पीएच	ताप	आक्सीजन की आवश्यकता	प्रभावित धातुएँ व अन्य पदार्थ	क्रिया
बैक्टीरिया						
1.	डिसल्फोविब्रियो प्रमुख : डि.सल्फ्युरिकांस सल्फाइड	4–8	10–40	अवायविक	लोहा, स्टील, स्टेनलेस स्टील, अल्युमिनियम, तस्ता, ताँबे की मिश्र धातुएँ	हाइड्रोजन के उपयोग और H_2O द्वारा SO_4 का S^{--} में अवकरण, परत में निर्माण को प्रोत्साहन
2.	डिसल्टोमैकुलम प्रमुख : डि. निग्रिफिकांस (या क्लोस्ट्रिडियम	6–8	10–40 (कुछ) 45–75	अवायविक	लोहा, स्टील, स्टेनलेस स्टील	$SO4^{--}$ का S^{--} व H_2S में अवकरण (स्पोर निर्माता)
3.	डिल्फोमोनास)	–	10–40	अवायविक	लोहा, स्टील	$SO4^{-}$ का S^{-} व H_2S में अवकरण (स्पोर निर्माता)
4.	थायोबैसिलस थायोआक्सीडांस	0.5–8	10–40	वायविक	लोहा, स्टील, ताँबे की मिश्रधातुएँ, कंक्रीट	गंधक एवं सल्फाइड का गंधकाम्ल में आक्सीकरण प्रतिरोध लेपन का विनाश
5.	थायोबैसिलस फेराक्सिडांस	1–6	10–40	वायविक	लोहा, स्टील	Fe^{2+} का Fe^{3+} में आक्सीकरण
6.	गैलियोनेल्ला	7–10	20–40	वायविक	लोहा, स्टील, स्टेनलेस स्टील	Fe^{2+} (अथवा Mn^{2+}) का Fe^{3+} अथवा (Mn^{3+}) में आक्सीकरण, गुलिका निर्माण को प्रोत्साहन
7.	स्फेरोटाइल्स	7–10	20–40	वायविक	लोहा, स्टील, स्टेनलेस स्टील	Fe^{2+} (अथवा Mn^{2+}) का Fe^{3+} अथवा (Mn^{3+}) में आक्सीकरण, गुलिका निर्माण को प्रोत्साहन
8.	एस. नाटान्स	–	–	–	अल्युमिनियम की मिश्र धातुएँ	
9.	स्यूडोमोनास	4–9	20–40	वायविक	लोहा, स्टील, स्टेनलेस स्टील	Fe^{3+} का Fe^{2+} में अवकरण
10.	पी.एयुरिजिनोसा	4–8	20–40	वायविक	अल्युमिनियम की मिश्र धातुएँ	
फफूँद						
11.	**क्लेडोस्पोरियम** रैसिनइ	3–6	10–15 10–35 (उत्तम)	–	अल्युमिनियम की मिश्र धातुएँ	ईंधन के घटकों के चयापचय द्वारा अम्लों का निर्माण

एवं अन्य निर्माणों की सतह पर चिपके नाकचिमटी, मोलस्क आदि का पाया जाना आम बात है। ये धरातलीय अवरोध को बढ़ाकर जलयान की गति को कम करते हैं तथा पाइपों को संकरा कर समुद्री जल के प्रवाह की गति को भी घटाते हैं। अन्ततोगत्वा लकड़ी के हिस्सों को नष्ट कर देते हैं। जैव अवरुद्धन अक्सर सहवर्ती संक्षारण से ज्यादा हानिकर होता है। परन्तु उन जीवों के चपापचय के सह–उत्पाद अक्सर अम्लीय होने के कारण धातु वाले हिस्सों के संक्षारण को बढ़ावा देते हैं। इसके साथ ही इस प्रकार के जीवों के निक्षेप से बनी परत आक्सीजन को धातु की सतह तक जाने से रोकती है और विभेदी वातनसेल का निर्माण कर संक्षारण को बढ़ाने में सहायता करती है। सतह पर चिपके जीव के नीचे का वातावरण आक्सीजनरहित होने के कारण सल्फेट अवकारक बैक्टीरिया के निवास व उनकी वृद्धि के लिए भी काफी उपयुक्त होता है। अक्सर जीव के चिपकने वाले स्थान व जीव के शरीर के बीच की खाली जगह विदर या दरार का कार्य कर विदरिका संक्षारण के लिए उचित वातावरण उपस्थित करती है।

समुद्री जल के कारण होने वाले इस प्रकार के अवरुद्धन की रोकथाम सतह की सफाई व क्लोरीन गैस के प्रयोग द्वारा जीवों को नष्ट करके की जा सकती है। ताँबे की मिश्रधातुएँ प्रतिरोधी होने के कारण इस प्रकार के अवरोधन से कम प्रभावित होती हैं। ताँबे के संक्षारण उत्पाद या तो घातक होते हैं अथवा कम चिपचिपे होने के कारण सतह से शीघ्र अलग हो जाते हैं और परत की मोटाई बढ़ने नहीं पाती है। अवरुद्धनरोधी विशेष पेन्ट को सतह पर लेपित करके भी इस प्रकार के जैव अवरुद्धन को रोका जाता है। समुद्री जलयानों को समय समय पर शुष्क डॉक में लाकर तली की सफाई की जाती है, कभी कभी उन्हें मीठे पानी की नदी या झील में भी लाकर रखा जाता है ताकि सतह से चिपके समुद्री जीव मर जाएँ। पर ऐसी अवस्था में सतह पर जमी कड़ी परत को खुरच कर ही निकालना पड़ता है। कैथोडिक संक्षारण इस प्रकार के जैवीय अवरुद्धन को रोकने में सहायक नहीं होता है।

जैव झिल्लियों के लाभकर उपयोग भी संभव हैं। इनसे बने संवेदकों की सहायता से जल में उपस्थित विषाक्त पदार्थों की उपस्थिति सुनिश्चित की जा सकती है। अवजल संशोधन के लिए भी इनका प्रयोग किया जाता है।

धातु के संक्षारण को रोकने के लिए विभिन्न उपायों को प्रयोग में लाया जाता है जिसमें देश की सकल राष्ट्र उत्पाद का एक बड़ा हिस्सा (लगभग 4 प्रतिशत) खर्च होता है। विशेषज्ञों के अनुसार देश के इस अधिभार को जैव प्रौद्योगिकी द्वारा कम किया जा सकता है। प्रयोगों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि जीवाणु से तैयार किया यौगिक सर्वथा योग्य है बनिस्बत उन यौगिकों के जो रासायनिक विधि द्वारा तैयार किए जाते हैं। जैव यौगिकों की सूक्ष्मता और गुणवत्ता को विभिन्न प्रयोगों से जाँचा परखा गया है जो कि धातु संक्षारण को रोकने के लिए अति उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से रासायनिक तौर तरीके से तैयार किए गए यौगिकों के उपयोग से अनेक खतरों के उत्पन्न होने की आशंका बनी रहती है जबकि जैव तकनीक से बनाए गए यौगिकों के प्रयोग से कोई नुकसान नहीं पहुँच सकता है। जैव संक्षारण को रोकने के लिए जैव प्रौद्योगिकी पर्यावरण की दृष्टि से एक सशक्त माध्यम है। निक्षेप के बनने की गति को बढ़ा देते हैं। अगर अन्दर के हिस्से में सल्फेट अवकारक बैक्टीरिया उपस्थित हैं तो ये गर्त्त विदरिका के अन्दर एनोडिक संक्षारण को तीव्र कर देते हैं।

स्टेनलेस स्टील के साथ वेल्डिंग किए गए हिस्सों में जीवाणुप्रेरित संक्षारण अक्सर देखने को मिलता है।

उच्चानुशीलन केन्द्र, रसायन अभियान्त्रिकी एवं प्रौद्योगिकी विभाग, प्रौद्योगिकी संस्थान काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

स्वाद और मसालों का अद्भुत विज्ञान

डॉ0 कृष्ण कुमार मिश्र

स्वाद को भोजन का मूल कहा जाता है इसलिए बढ़िया भोजन का स्वादिष्ट होना जरूरी है। भोजन पौष्टिक हो, यह आवश्यक तो है ही, इसके साथ ही साथ यह भी उतना ही जरूरी है कि वह जायकेदार हो। हमारा देश खानपान की विविधता में बहुत पहले से संपन्न रहा है। हमारे यहाँ शुभ और मांगलिक अवसरों पर दावत की परम्परा रही है। इसमें आगंतुकों को सुरुचिपूर्ण व्यंजन परोसने का प्रचलन रहा है। आज भी वह बदस्तूर जारी है। धार्मिक अनुष्ठानों में देवी–देवताओं को प्रसाद के रूप में छप्पन भोग चढ़ाने की परिपाटी रही है। ऐसी ही मिलती जुलती परिपाटी कमोबेश पूरी दुनिया में मिलती है।

भोजन को स्वादिष्ट और जायकेदार बनाने में मसालों की अहम भूमिका होती है। मसालों की पैदावार के मामले में हमारा देश अग्रणी रहा है। दुनिया में मसालों के उत्पादन तथा साथ ही निर्यात में आज भारत का स्थान शीर्ष पर है। सदियों पहले भी भारत से मसालों का निर्यात होता रहा है। इतिहास में जिक्र मिलता है कि यूरोप एवं मध्य एशिया के लोग व्यापार के सिलसिले में जब भारत आते तो मसाले खरीदना नहीं भूलते थे। कहते हैं कि इन मसालों में कालीमिर्च का खास स्थान था। कई यूरोपीय देशों के व्यापारी तो सिर्फ मसालों के लिए सात समुन्दर पार करके भारत आते थे। पुस्तकों में ऐसा जिक्र मिलता है कि आज से तकरीबन दो हजार साल पहले ऐतिहासिक नालंदा विश्वविद्यालय में विशिष्ट लोगों को खाने के लिए सुगंधित चावल मिलता था। यह संभवतः बासमती ही था जैसा कि चीनी यात्री ह्वेन सांग के उल्लेखों से पता चलता है।

अच्छे स्वास्थ्य और आरोग्य के लिए जरूरी है कि हमें भोजन में सभी जरूरी तत्व उचित मात्रा में मिलें। भोजन के पांच घटक होते हैं : कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन और खनिज लवण। जिस भोजन में ये तत्व समुचित मात्रा में मौजूद होते हैं उसे पौष्टिक भोजन कहते हैं। वैसे आहार में इन घटकों की पूर्ति तो चंद चीजें खाने से ही की जा सकती है। फिर हमारे खानपान में इतनी विविधता क्यों है ? होटलों और जलपानगृहों में व्यंजनों की इतनी किस्में और उनकी लम्बी सूची (मेनू) की क्या उपादेयता है ? इन सवालों का एक ही जवाब है स्वाद। हमारे स्वाद की चाहत की वजह से नाना प्रकार के व्यंजन वजूद में आए। कोई भी दो व्यंजन स्वाद और जायके में कभी समान नहीं हो सकते। एक ही तरह की सामग्रियों में किसी एक ही व्यक्ति द्वारा तैयार कोई एक व्यंजन स्वाद और जायके में दुबारा उसी व्यक्ति द्वारा बनाए गए उसी व्यंजन के समान नहीं होगा। इसके पीछे
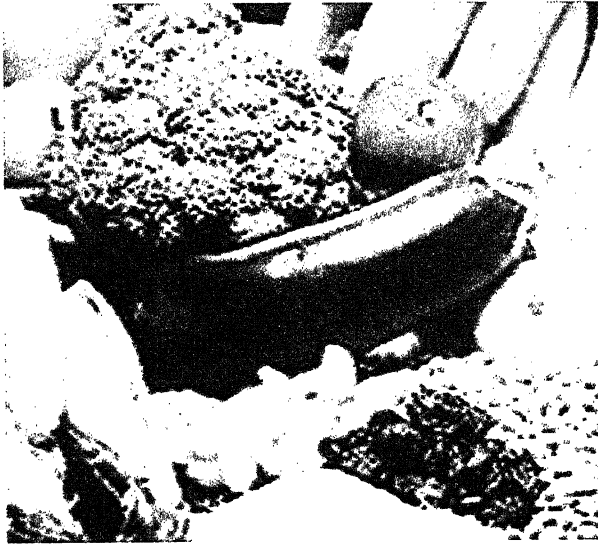
वास्तव में एक जटिल विज्ञान कार्य करता है। स्वाद के विज्ञान की दिशा में शोध से उस पर से परतें धीरे–धीरे हट रही हैं। स्वाद के विज्ञान का यह अनुसंधान आज आण्विक जीवविज्ञान के स्तर पर पहुँच गया है। आज अमेरिका में स्वाद व्यंजन के लिए उत्तरदायी जीन तथा उसके रिसेप्टरों पर अनुसंधान हो रहा है। उनकी योजना जीवन के कई क्षेत्रों में इसके इस्तेमाल की है।

वर्गीकरण के हिसाब से स्वाद चार प्रकार के हाते हैं : ये हैं मीठा, खट्टा, कड़वा (तीखा) और नमकीन। लेकिन यह आम अनुभव की बात है कि भोजन में हमें अनेकों स्वाद मिलते हैं। उसकी वजह यह है कि इन स्वादों के सम्मिश्रण से यह विविधता जन्म लेती है। आइए देखें कि स्वाद संवेदन के पीछे क्या है।

जैसा कि हम जानते हैं कि मनुष्य में पाँच तरह की ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं। स्वाद संवेदन की जिम्मेदारी मुख्यतः जिह्वा होती है। स्वाद की अनुभूति वैसे तो मस्तिष्क से होती है लेकिन वहाँ तक संकेत जिह्वा, गले और तालू में मौजूद संवेदी तंत्रिकाओं द्वारा भेजा जाता है। स्वाद ग्रन्थियाँ वैसे तो हमारी जिह्वा, गले और तालू में मिलती हैं लेकिन उनकी सर्वाधिक संख्या जिह्वा में होती है। हमारी जिह्वा पर करीब दस हजार स्वाद ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं। ये छोटी–छोटी उभारनुमा रचनाएं होती हैं। ये ग्रन्थियाँ जिह्वा की सतह पर महीन महीन छिद्रों में खुलती हैं। हम जब कुछ खाते हैं तो उसमें मौजूद पदार्थ लार से मिलकर घुल जाता है। जब घुला हुआ पदार्थ इन छिद्रों में से होकर अंदर जाता है तो ग्रन्थियों से जुड़ी संवेदी तंत्रिकाएँ उस रासायनिक अनुभूति को विद्युत स्पन्दों में बदलकर हमारे केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र के मेडुला ऑब्लांगेटा तथा थैलमस से होकर मस्तिष्क तक पहुँचाती हैं जहाँ से हमें स्वाद की अनुभूति होती है। हर स्वाद का अनुभव करने वाली ग्रन्थियाँ हमारी जिह्वा के अग्र भाग पर, नमकीन स्वाद की ग्रन्थियाँ अग्र एवं ऊपरी भाग पर होती हैं। तीखे स्वाद की ग्रन्थियाँ पीछे की ओर तथा खट्टे स्वाद की ग्रन्थियाँ हमारी जिह्वा के दोनों किनारों की ओर होती हैं।

किसी व्यंजन के स्वादिष्ट और जायकेदार होने में स्वाद के साथ उसकी खुशबू की बड़ी खास भूमिका होती है। स्वाद और सुवास एक दूसरे के पूरक हैं। हालाँकि दोनों का ज्ञान हमें दो अलग–अलग अंगों द्वारा होता है लेकिन दोनों का अनुभव हमें सामूहिक तौर पर एकसाथ होता है। खुशबू का अनुभव करने के लिए हमारी नाक में भीतर की ओर घ्राण अंग (ऑल्फैक्ट्री ऑर्गन) होता है। जब हम कोई चीज मुँह में लेकर चबाते और निगलते हैं तो उसकी गंध नासिका से होकर इस घ्राण अंग तक पहुँचती है। इससे हमें उस भोजन की गंध का अनुभव होता है। इसे परखने के लिए हम खुद एक प्रयोग कर सकते हैं। हम खाना खाते समय यदि अपनी नाक एक हाथ से बंद कर लें तो पाएँगे कि स्वाद में भिन्नता मालूम हो रही है। ऐसा इसलिए कि हमें स्वाद तो मिल रहा है लेकिन गंध की अनुभूति नहीं हो रही है। यही कारण है कि अच्छे भोजन का स्वादिष्ट होने के साथ सुवासित होना भी एक जरूरी शर्त है। स्वाद के साथ कुछ अन्य बातें भी जुड़ी हैं। यह रोजमर्रा के अनुभव की बात है कि गरम खाना हमें ज्यादा स्वादिष्ट लगता है। ऐसा इसलिए क्योंकि गरम भोजन में पानी का पृष्ठ तनाव कम होता है। इससे वह हमारी जीभ पर ज्यादा जगह घेरता है जिससे स्वाद ग्रन्थियों की सक्रियता बढ़ जाती है। इसके विपरीत खाना ठंडा होने पर स्वाद में फीका लगता है क्योंकि कम ताप पर स्वाद ग्रन्थियाँ कम सक्रिय हो पाती हैं। भोजन में संतुष्टि का स्वाद से सीधा सम्बन्ध है। वैज्ञानिकों का कहना है कि धीरे धीरे खाने से लार के बराबर स्राव से हमें अधिक स्वाद तथा संतुष्टि मिलती है। इससे हमें अपेक्षाकृत कम भोजन में ही तृप्ति मिल जाती है। भोजन के समय हमारी मानसिक स्थिति, हमारे विचारों और भावनाओं का हमारे पाचन पर प्रभाव पड़ता है। ऐसा इसलिए क्योंकि इनका लार सहित दूसरे पाचक रसों के स्राव पर प्रभाव पड़ता है। इसीलिए डाक्टर सलाह देते हैं कि शान्त, प्रसन्नचित्त और एकाग्र होकर भोजन करना चाहिए। इससे पाचन अच्छा होता है और फलतः हमारा स्वास्थ्य ठीक रहता है।

अलग अलग व्यक्तियों में स्वाद संवेदन अलग अलग होता है। चूँकि बच्चों में स्वाद ग्रन्थियों की संख्या अधिक होती है अतः उनका स्वाद संवेदन बड़े बुजुर्गों की तुलना में बेहतर होता है। ऐसा पाया गया है कि उम्र बढ़ने के साथ स्वाद संवेदना घटती जाती है। यही कारण है कि वृद्ध लोगों की स्वाद की पहचान और

परख जरा कमजोर होती है। अध्ययन से मालूम होता है कि पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं का स्वाद संवेदन तेज होता है।

नशीले पदार्थ जैसे सुर्ती, बीड़ी, सिगरेट, गुटखा या शराब का सेवन करने से स्वाद की पकड़ कमजोर होती है। विज्ञान की भाषा में इसे हाइपोग्रेशिया कहते हैं। सुर्ती में मिलाए जाने वाले चूने की वजह से स्वाद ग्रन्थियाँ प्रभावित होती हैं। इस वजह से स्वाद बदला बदला सा लगता है। कुछ दवाओं के सेवन से भी स्वाद बदला हुआ लगता है। इससे खानपान अरुचिकर लगता है। इसे डिसग्रेशिया कहते हैं। यह एक आम अनुभव की बात है कि सर्दी जुकाम होने पर प्रायः खाने में स्वाद नहीं मिलता और भोजन से अरुचि हो जाती है।

विज्ञान की तरक्की के साथ स्वाद की दुनिया में भी क्रांति आई है। चार मूल स्वादों के अलावा वैज्ञानिक पाँचवें स्वाद को खोज लेने की बात कर रहे हैं। अमेरिका स्थित मियामी विश्वविद्यालय के निरूपा चौधरी और स्टीफन रोपर ने इस नए स्वाद का नाम दिया है 'ऊमॉमी'। यह जापानी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है अतिस्वादिष्ट और सुगंधित भोजन। इस नए स्वाद के पीछे एक रासायनिक यौगिक की भूमिका होती है जिसे मोनोसोडियम ग्लुटामेट कहते हैं। जापान एवं चीन में व्यंजन बनाने में इस यौगिक का इस्तेमाल काफी पहले से हो रहा है। इसे मिलाने से भोजन का जायका ही बदल जाता है। जापान में इस यौगिक को 'अजि–नो–मोटो' तथा चीन में 'मेइ–जिंग' कहते हैं। वैसे पूरी दुनिया में यह अजि–नो–मोटो के नाम से बिकता है। मोनोसोडियम ग्लुटामेट सफेद रंग का पाउडर होता है। इसका खुद का कोई स्वाद नहीं होता लेकिन पकवान में मिलाए जाने पर यह उसके स्वाद और जायके को बढ़ा देता है। इसकी सबसे खास बात यह है कि अलग अलग व्यंजनों में मिलाने पर इसका असर भी अलग अलग होता है। सब्जी में इसका असर फलों में असर से भिन्न होता है। उसी तरह मांस में तथा अंडे में मिलाए जाने पर इसका प्रभाव अलग अलग होता है। शोधकर्ताओं का कहना है कि यह यौगिक वास्तव में स्वाद ग्रन्थियों को ज्यादा सक्रिय कर देता है जिससे भोजन और ज्यादा स्वादिष्ट लगने लगता है।

अजि–नो–मोटो का सर्वाधिक उत्पादन जापान में होता है। वहाँ इसे सेम से तैयार करते हैं। इसके विपरीत चीन में इसे समुद्री वनस्पतियों से तैयार किया जाता है। यह यौगिक वैसे तो जाँच के दौरान स्वास्थ्य के लिए निरापद पाया गया है लेकिन अमेरिकी सरकार ने एहतियातन शिशु आहार में इसके प्रयोग की अनुमति नहीं दी है क्योंकि एलर्जी से मिलते जुलते लक्षण बच्चों में पाए गए हैं। चीन में अक्सर रेस्टोरेन्ट में खाने वालों में पसीना आना, सरदर्द, पेट में जलन जैसी शिकायतें मिली हैं। इसे चायनीज रेस्टोरेन्ट सिन्ड्रोम कहते हैं। लेकिन यह अजि–नो–मोटो की वजह से ही होता है, इस बारे में निश्चित तौर पर कुछ नहीं कह सकते। फिलहाल अजि–नो–मोटो स्वाद की दुनिया में लोगों की पसंद का केन्द्र बना हुआ है और उन लोगों के लिए तो वरदान ही है जो किन्हीं कारणों से अपनी स्वाद संवेदना खो चुके हैं या उनक संवेदना कम हो गई है। अमेरिका में कड़वे स्वाद संवेदन के लिए उत्तरदायी जीन की खोज पर काम चल रहा है। पिछले दिनों कई लेख इस विषय पर प्रकाशित हुए हैं। एक बार यदि पता चल जाए कि अमुक जीन ही कड़वे स्वाद की जानकारी हेतु जिम्मेदार है तो उसमें परिवर्तन किया जा सकता है। इससे हमें कड़वे स्वाद की अनुभूति नहीं होगी। वैज्ञानिकों का कहना है कि इसका पता चल जाने पर स्वादिष्ट दवाइयों के साथ ज्यादा सुरक्षित पीड़कनाशी (पेस्टीसाइड्स) की खोज में बहुत मदद मिल सकेगी। शोधकर्ताओं का कहना है कि आने वाले दिनों में ऐसे पेस्टीसाइड्स बनने लगेंगे जो विषैले नहीं होंगे। हाँ, उन रसायनों में एक खास गंध होगी जो कीड़े–मकोड़े के लिए इतनी प्रबल होगी कि वे उससे प्रतिकर्षित होकर दूर ही भागेंगें।

होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केंद्र
टाटा मौलिक अनुसंधान संस्थान
वी.एन. पुरब मार्ग
मानखुर्द, मुंबई-400088
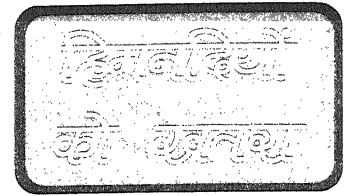
डॉ0 सिद्धनाथ उपाध्याय

1898 में जब ब्रिटिश अंटार्कटिक सर्वे के वैज्ञानिकों ने अंटार्कटिक के बर्फ के पिघलने के कारण विश्व के बढ़ते तापमान (ग्लोबल वार्मिंग) को बताकर चेतावनी दी थी तो उसे नजरअंदाज कर दिया गया था, किंतु अब विशेषज्ञों का मानना है कि पृथ्वी के तापमान में कुछ ही डिग्री का परिवर्तन वास्तव में बहुत बड़े बदलाव ला सकता है। एक अनुमान के अनुसार बढ़ते तापमान से जलवायु में इतने परिवर्तन होंगे जो पिछले दस हजार वर्षों में भी देखने में नहीं आए हैं। धरतीवासियों को जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप जिस प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ेगा, अभी कुछ ठीक से नहीं कहा जा सकता है। सबसे बड़ा खतरा तो हिमशैलों के पिघल कर टूटने से होगा। इससे हिमनदियों के अस्तित्व को ही खतरा उत्पन्न हो गया है।

हिमनदियों का निर्माण बर्फ और हिम के एकत्र हो जाने से होता है। आमतौर से ऐसा हिम का हिमनदी के उन पर्वत शिखरों पर जमने से होता है, जिन्हें संग्रह क्षेत्र कहते हैं। इसके विपरीत अधिकतर पिघलना और वाष्पीकरण नीचे उन क्षेत्रों में होता है जिन्हें उच्छेदन या अपक्षरण क्षेत्र कहते हैं। इन्हीं दो क्षेत्रों के बीच एक क्षेत्र ऐसा होता है जहाँ हिमपात और हिमगलन एक दूसरे के बराबर होता है। यहाँ हिमनदी साम्यावस्था में रहती है। हिम के जमने और पिघलने में संतुलन बना रहता है। जब कभी भी यह संतुलन बिगड़ जाता है अर्थात् या तो अधिक हिम जम जाता है अथवा अधिक पिघल जाता है तो ऐसा कहते हैं कि हिमनदी आगे बढ़ रही है अथवा पीछे हट रही है। हिमनदियों का आगे बढ़ना या पीछे हटना प्रकृति की आम घटनाएँ हैं। ऐसा होता रहता है।

किन्तु इन दिनों हिमनदियों का जमना कम और पिघलना अधिक देखने में आ रहा है। अर्थात् हिम के जमने की दर से हिम के पिघलने की दर कहीं अधिक है। हिमनदियों की पिघलने की इस तीव्र गति का कारण है विश्व का बढ़ता हुआ तापमान।
अंतरशासकीय जलवायु परिवर्तन पैनल (आई.पी.सी.सी.) के एक अनुमान के अनुसार 1990 की तुलना में धरती का तापमान सन् 2010 तक 2 से 5 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ सकता है, वृद्धिदर 0.2 से 0.5 डिग्री प्रतिदशक हो सकती हैं और तो और हरित पौधगृह पैदा करने वाली गैसों के उत्सर्जन ने हिमनदियों के पिघलने में किसी सीमा तक मदद पहुँचाई है। नई दिल्ली स्थित जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के हिम नदी शोध दल के सम्मानित सदस्य सैयद इकबाल हसनैन का कहना है कि बढ़ते विश्व तापमान के कारण हिम के जमने की गति कम हो गई है। अमेरिका के भूगर्भ परीक्षण ने इस क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है। तापमान में मात्र 1 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि के परिणामस्वरूप हिमनदियों के पर्वत शिखरों के क्षेत्र में 40 प्रतिशत की कमी और मात्रा में 1850 के आँकड़ों की तुलना में 50 प्रतिशत से भी अधिक की कमी देखने में आई है।

पिछली अर्धशती के दौरान स्विट्ज़रलैण्ड स्थित ज़्यूरिख विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक एनगाडिन और सिम्प्लॉन पर्वतशिखरीय हिमनदियों की जाँच परख के

बाद इस परिणाम पर पहुँचे कि एनगाडिन में 1955 के बाद से 54 में से 24 हिमनदियों के पर्वतशिखर पिघल चुके हैं और सिम्पलॉन में 1967 के बाद 31 में से 10 पूरी तरह विलुप्त हो चुके हैं। स्विटजरलैण्ड के ही फ्रिबोर्ग विश्वविद्यालय के मार्टिन बेनिस्टोन ने आशंका व्यक्त की है कि 2050 तक सभी पर्वतशिखरीय हिमनदियाँ परिदृश्य से गायब हो जाएंगी।

[illegible] में भी हिमनदियाँ विनाश की ओर अग्रसर हैं। यहाँ की 34 हिमनदियों के क्षेत्र में 11 प्रतिशत और मात्रा में 12 प्रतिशत की कमी पाई गई है। इसी प्रकार पेरू का कोरी कालिस ग्लेशियर 10 प्रतिशत सिकुड़ गया है। अमेरिका के ओहायो स्टेट यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिक लोनी थाम्सन का कहना है—"आप वहाँ बैठे-बैठे हिमनदियों के सिकुड़ने को देख सकते हैं। यह मान लें कि यदि हिमनदी के सिकुड़ने की दर यही रहेगी तो कोरी कालिस हिमनदी की बर्फ की टोपी के गायब होने का समय 2010 से 2020 के बीच होगा।" इसी प्रकार पेरू की अन्य पर्वतशिखरीय हिमनदी क्वेलकाया 1963 की तुलना में 20 प्रतिशत छोटी हो जाएगी। अफ्रीका, ब्रिटिश, कोलम्बिया, अलास्का, वेनेजुएला और पापुआ न्यूगिनी की हिमनदियों की भी कमोबेश ऐसी ही स्थिति है।

किन्तु सबसे चौंकाने वाली बात यह है कि हिमालय की हिमनदियाँ विश्व की हिमनदियों की तुलना में बहुत तेजी से सिकुड़ रही हैं। हिमालय की हिमनदियों का पिघलना ज्वलंत समस्या है। अत्यधिक विनाश केन्द्रीय और पूर्व की तरफ देखा जा सकता है। ऐसा सोमनाथ दास गुप्ता, जो जादवपुर विश्वविद्यालय कोलकाता में आचार्य हैं, का कहना है। हिमालय की हिमनदियों में गंगोत्री की हालत विशेष रूप से चिंतनीय है। जियोलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया के अनुसार 1935—1996 के बीच एकत्र किए गए आँकड़े यह सिद्ध करते हैं कि ग्लेशियर 1,147 मीटर पीछे हटा है, प्रतिवर्ष लगभग 19 मीटर की दर से।

हिमालय की हिमनदियों के तेजी से पिघलने का परिणाम यह है कि हिमालय पर्वत की झीलें तेजी से जलप्लावित हो रही हैं। इन झीलों के आसपास निवास करने वाले हजारों लोगों का जीवन खतरे में है। यूनाइटेड नेशन्स इन्वायरनमेंटल प्रोग्राम (यूएनईपी) और इन्टरनेशनल सेन्टर फार इन्टग्रेटेड माउन्टेन डेवलपमेंट ([illegible]) के वैज्ञानिक पिछले दिनों हिमालय क्षेत्र की वृहत बाढ़ों के अध्ययन से उपरोक्त परिणाम पर पहुँचे हैं। इस अध्ययन से पता चलता है कि नेपाल और भूटान की 34 हिमनदियों की झीलों के आकार में वृद्धि हो रही है और विस्तार की यह रफ्तार इतनी तेज है कि 5 वर्षों की अवधि में झीलों के तटबंध टूट सकते हैं। इसका ज्वलंत उदाहरण नेपाल की टीशो रोलपा झील है जो 1950 के अपने आकार से 6 गुना बड़ी हो चुकी है।

यह समस्या विश्वव्यापी है, विशेष रूप से दक्षिण अफ्रीका, भारत और चीन के लिए। ग्लेशियर झीलों के फटने के बाद और पंकस्खलनों के कारण नदियों के सूखने की समस्याओं के जन्म होंगे। कहने की आवश्यकता नहीं कि इससे नदी तटीय लोगों का जीवन नर्क में बदल जाएगा।

मौसम के अध्ययन का मुद्दा ऐसा है जिस पर जितना ध्यान देना चाहिए, वैसा नहीं हो सकता है। हिम (स्नो) के पिघलने के अध्ययन से संबंधित उपयुक्त तकनीक का भारत में अभाव है। वास्तविकता यह है कि हिमनदियों का अध्ययन सरकार द्वारा केवल रक्षा कार्यों के लिए किया जाता है और जाहिर है कि इस प्रकार के अध्ययनों को गोपनीय रखा जाता है। डीएसटी के वैज्ञानिक आर.के. गुप्ता और जियोलॉजिकल सर्वे के गौतम घोष मानते हैं कि इस संबंध में सरकारी नीति ढुलमुल है। हमने सही तरीके से विश्व के बढ़ते तापमान के परिणामों का अध्ययन नहीं किया है। यदि समय रहते हमने इस संबंध में मिल जुलकर कुछ नहीं किया तो महाविपत्ति हमारे सामने खड़ी है।

पूर्व अध्यक्ष, वनस्पति विभाग
सी.एम.पी. डिग्री कालेज, इलाहाबाद-2

अप्रतिम मेधावी जॉन नैश

✍ डॉ0 राजीव रंजन उपाध्याय

हॉलीवुड के नाम से सभी परिचित हैं, और प्रतिवर्ष फिल्मों के विविध पक्षों पर प्रदान किए जाने वाले आस्कर पुरस्कारों का महत्व फिल्म अभिनेताओं आदि के लिए वही स्थान रखता है जो विज्ञान के क्षेत्र में प्रतिवर्ष प्रदान किए जाने वाले नोबेल पुरस्कारों को। सामान्य रूप से देखने पर आस्कर पुरस्कारों और नोबेल पुरस्कारों में कुछ साम्य नहीं है। परन्तु इस वर्ष एक फिल्म, जो आस्कर पुरस्कारों से सम्मानित की गई है– 'द ब्यूटीफुल माइण्ड' इस तथ्य का अपवाद है। यह फिल्म, उस व्यक्ति से जुड़ी है, उसके जीवन के विभिन्न पक्षों से सम्बद्ध है जिसे लोग डॉ0 जॉन नैश के नाम से जानते हैं। डॉ0 नैश ऐसे विलक्षण विचारक, चिन्तक और मेधावी गणितज्ञ रहे हैं जिन्हें 1994 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। परन्तु यह मात्र सम्मान प्राप्त करने की ही बात नहीं है, उसका एक मानवीय पक्ष भी है, जिसने हॉलीवुड के निर्णायकों को, इस फिल्म 'द ब्यूटीफुल माइण्ड' को आस्कर पुरस्कार से सम्मानित करने हेतु बाध्य कर दिया। वह तथ्य है डॉ0 नैश का दुखद उन्मादग्रस्त, साइजोफ्रेनिक जीवन, और उसका सशक्त चित्रांकन। इसका समस्त श्रेय अमेरिकी सामान्य जन को जाता है जिन्होंने बारम्बार इस विलक्षण, प्रतिभाशाली मेधावी गणितज्ञ के कृतित्व और व्यक्तित्व के विषय में जानने के लिए एक प्रकार से जन आन्दोलन सा प्रारम्भ कर दिया था। परिणाम था 'द इशेन्शियल जॉन नैश' नामक आत्मकथा का प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा प्रकाशन। इसका संपादन हेरोल्ड कुन्ह और सिल्विया नास्र ने किया। इसी पुस्तक पर, इसके पृष्ठों पर अंकित विविध मार्मिक चित्रणों पर आधारित है वह विख्यात हृदयस्पर्शी फिल्म जिसे हम 'द ब्यूटीफुल माइण्ड' के नाम से जानते हैं। जॉन नैश का जीवन नव सर्जना, नवीन गणितीय विचारों का, विक्षिप्तता एवं उन्माद का एक अद्भुत, विलक्षण मिश्रण रहा है, जिसके परिणामस्वरूप 'गेम थ्योरी' की अवधारणा की उत्पत्ति हुई है, जिसके कारण अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्तों से लेकर जीवन के उत्पत्ति की अवधारणाएँ प्रभावित हुई हैं।

जॉन नैश ने, अपने युवाकाल में विलक्षण मेधा का परिचय देते हुए 1949–50 की अवधि में, अमेरिका की प्रिंसटन यूनिवर्सिटी के गणित विभाग में स्नातक श्रेणी में अध्ययन करते हुए, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर जो शोध पत्र प्रकाशित किया, उसने अर्थशास्त्र की समस्याओं को सुलझाने के लिए एक नवीन दिशा प्रदान की। इसी अवधि में नैश ने 'गेम थ्योरी' की अवधारणा को प्रतिपादित कर 'नैश इक्वीलीब्रियम' की नींव डाली जिसके फलस्वरूप अर्थशास्त्र से लेकर जीवन की उत्पत्ति

संबंधी नियमों का विवेचन सहज हो गया। जान नैश की इन्हीं अवधारणाओं को 29 पृष्ठों में समेटे थीसिस पर उन्हें प्रिंसटन विश्वविद्यालय से पीएच.डी. की उपाधि प्रदान की गई थी। नैश शुद्ध गणितीय प्रमेयों को हल करने में लीन हो गए और उनकी इस दिशा की कीर्ति उन्हें एम आई टी तक खींच लाई। जान नैश ने इस अवधि में 'डिफरेंशियल ज्योमेट्री' की समस्या को, प्रमेयों को नवीन स्वरूप प्रदान किया। परन्तु यही अवधि उनके लिए अतीव दुखद भी सिद्ध हुई। डॉ0 जान नैश क्रमशः मनस्विता से विक्षिप्तता की ओर बढ़ने लगे। उनका जीवन अंधकारमय हो गया। 1959 से लेकर 1970 तक वे विक्षिप्त ही रहे। उन दिनों का अतीव मर्मस्पर्शी चित्रण उनकी आत्मकथा के लेखकों ने किया है।

'साइजोफ्रीनिया' शब्द इयूगेन ब्लूलेन ने 1908 में प्रयोग किया था। सामान्य रूप से यह व्याधि एक प्रतिशत लोगों को प्रभावित करती है। इस व्याधि से प्रभावित व्यक्ति कल्पनालोक और वास्तविकता में अन्तर नहीं कर पाता। वह एक प्रकार से मानसिक उन्माद में डूबा रहता है। यह मानव मस्तिष्क की अज्ञान गहराइयों से उत्पन्न व्याधि है। इसका आंशिक निदान मनोचिकित्सा, विद्युतीय झटके और इंसुलिन के द्वारा किया जाता है। परन्तु इसमें परिवार का संवेदनापूर्ण सहयोग अतीव आवश्यक होता है। डॉ0 जान नैश अपनी पत्नी, सहयोगी गणितज्ञों एवं प्रिंसटन विश्वविद्यालय के वातावरण के प्रभाव के कारण सामान्य हो सके। इसी तथ्य की चर्चा उन्होंने 1994 के अपने नोबेल पुरस्कार लेक्चर में इन शब्दों में की थी "आज पुनः एक बार मैं एक वैज्ञानिक की भाँति सोच रहा हूँ, चिन्तन कर रहा हूँ ..... मानव मस्तिष्क के चिन्तन की एक सीमा होती है........और यह ब्रह्माण्ड असीम है।" जॉन नैश के अवदान से जन जन को परिचित कराने में 'दि ब्यूटीफुल माइंड' का योगदान किसी प्रकार से कम नहीं है।

परिसर कोठी काके बाबू
देवकाली मार्ग, फैजाबाद

पृष्ठ 13 का शेष ...

कि पश्चिमी देशों में प्रदूषण निवारण हेतु मनोविज्ञान को सन्नद्ध किया गया है।

गौरतलब है कि स्वच्छ जल की ऊहापोह में (कल्पित) दुनिया एक 'नीली क्रांति' का सपना संजोती रही है किंतु आज बढ़ते हुए संक्रमण और इससे उत्पन्न बीमारियों के दौर में वह कल्पना नीली होने क पहले ही पीली होती नजर आ रही है। दुनिया गंभीर जल संकट से गुजर रही है और जल विसंक्रमण का भविष्य आँखों से ओझल है।

सदियों पहले संत कवि रहीम ने जैसा कि लेख के शीर्ष में उद्धृत है, पानी में आदमी की आबरू और सेहत दोनों मतलब ढूँढे थे जो अमूमन रिश्तों में आते हैं। अब हम पुराने दौर में तो लौट नहीं सकते। आज की हालात में सिर्फ पानी नहीं बल्कि पानी की गुणता पर जोर देना होगा। अतः कवि से क्षमायाचना के साथ यह संशोधित मनोवैज्ञानिक संदेश देना बेहतर होगा :

जल की गुणता राखिए, बिन गुणता सब सून
गुणता गए न ऊबरे, मानुस आँत महीन।

2/203, देवदर्शन
डोंगरी पाड़ा, घोड़बंदर मार्ग
थाणे, महाराष्ट्र-400601

मधुप गुनगुनाकर कह जाता

✍ विश्वमोहन तिवारी

"मधुप गुनगुनाकर कह जाता कौन कहानी ये अपनी" प्रसाद ने 'लहर' काव्य संग्रह में मधुप को दुख संदेशवाहक के रूप में रखा, तो निराला ने **'फूटे हैं आमों में बौर/भौंर वन वन टूटे हैं/होली मची ठौर ठौर/ सभी बंधन छूटे हैं"** बसंत की मस्ती के रूप में, महादेवी ने भटकाने वाले के रूप में, **"विश्व का क्रंदन भुला देगी मधुप की मधुर गुनगुन/ क्या डुबा देंगे तुझे यह फूल के दल ओस गीले ? तू न अपनी छांह को अपने लिए कारा बनाना/जाग तुझको दूर जाना।**

रीतिकाल में बिहारी ने जयपुर के राजा को, जो एक कम उम्र बालिका समान युवती के प्रेम में इतने आसक्त हो गए कि राजकाज ढीला पड़ने लगा था, एक दोहे के द्वारा सचेत किया था, **"नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल/ अली कली ही सौं बंध्यो, आगे कौन हवाल।"** बिहारी का समाज प्रेम, साहस और सूझबूझ की प्रशंसा जितनी भी की जाए कम है क्योंकि राजा जयसिंह तब प्रसिद्ध राजा जयसिंह बन सके और उन्होंने बिहारी को प्रत्येक दोहे पर एक अशर्फी देने का वचन दिया था।

भक्तिकाल में तो सभी भक्त कवियों ने कृष्ण की भ्रमर से उपमा दी, किंतु उनमें विशेषकर, सूरदास ने भ्रमरगीत में, कृष्ण के प्रति गोपियों के प्रेम की उदात्तता को परमात्मा के लिए आत्माओं की तड़प के लिए रूपक बनाया। भृंग के जीवन के अंदर यदि हम वैज्ञानिक दृष्टि से झाँकें, तब हमें ये मधुप कौन सी

कहानी गुनगुनाकर सुनाएँगे, देखिए !

पृथ्वी पर सबसे सफल जाति

भ्रमर या भौंरा या अलि या भृंग के रूपक या उपमा द्वारा मानव व्यवहार की अनोखी सूक्ष्म झाँकियों की रससिक्त अभिव्यक्ति की हिन्दी साहित्य में मनोरम छटाएँ हैं। भृंग के जीवन के अंदर हम वैज्ञानिक दृष्टि से झाँकें तब हमें जैव विकास की अनोखी झाँकियों के अद्भुत दर्शन होते हैं। इस पृथ्वी पर कुल ज्ञात जीव जातियों की संख्या लगभग साढ़े सत्रह लाख है, जिनमें से स्तनधारियों की संख्या लगभग 4000, पक्षियों की जातियों की संख्या लगभग 9000 तथा कीटों की समस्त जातियों की संख्या लगभग 10 लाख है। स्तनधारी जीव अधिकांशतया विशाल तथा बड़े मस्तिष्क वाले होते हैं। पक्षी भी अद्भुत गुणों से युक्त आकाश में विचरण करने वाले सर्वाधिक स्वतंत्र जीव हैं, तब कीट विविधता में सबसे सफल या सबसे आगे कैसे ? कीटों की दस लाख जातियों में से साढ़े तीन लाख जातियाँ केवल भृंगों की हैं, कैसे, क्या रहस्य है ? और फिर भृंग जातियाँ पहाड़ों, मैदानों, मरुस्थलों, वनों यहाँ तक कि ध्रुव प्रदेशों को भी प्रचुरता से आबाद करती हैं। अब वैज्ञानिकों की जब कीटों, विशेषकर भृंगों, में रुचि बढ़ती जा रही है, तब तेजी से नई नई जातियों की खोज हो रही है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि अज्ञात भृंग जातियों की संख्या दस लाख हो सकती है।

भृंग जातियों की पहचान क्या है ? अधिकांश कीटों के उड़नशील अवस्था में, दो जोड़ी (एक आगे, एक पीछे) पंख ('पर' नहीं) होते हैं। कोई 20 करोड़ वर्ष पूर्व जैविक विकास क्रम में कुछ कीटों के अगली जोड़ी के पंख कड़े तथा मजबूत होकर 'कवच–कपाट' की तरह बन गए– यही 'कवच–कपाट' 'कवच–पंख' कहलाते हैं यद्यपि ये उड़ने में मदद नहीं करते। एक जोड़ी उड़नशील पंखों के स्थान पर 'कवच पंख' या 'कवच कपाट' के विकसित होने से इन जातियों की जैव सफलता या अतिजीविता बढ़ गई। समस्त कवच पंखी जातियों के वंशों एवं कुलों को मिलाकर जो समूह बनता है उसे 'कवचपंखी गण' कहते हैं। कीटों के कुछ अन्य गण हैं– तितली, पतंगे, चींटे, मधुमक्खियाँ, मक्खियाँ, बर्र आदि।

मेंढक के पेट में जुगनू चमके

ये कवच पंख रक्षा करने के अतिरिक्त और भी मदद करते हैं। एक तो वे इन्हें अन्य शिकारियों के लिए एक सीमा तक अभोज्य भी बना देते हैं। यह दूसरी बात है कि कुछ मेंढकों की जातियों को जुगनू की तरह (यह भी कवचपंखी भृंगों का एक कुल है) आहार के लिए इतने प्रिय हैं कि उन मेंढकों के पेट के अंदर से जुगनुओं की टिमटिम चमक अद्भुत आकर्षक दिखाई देती है। जुगनू का नाम लेते ही धुली बरसात की तिपहरी की इंद्रधनुषी मुस्कान याद आ जाती है, तथा आसमान के तारों की जगमग को भी हराने वाली जमीन पर जगमगाते जुगनुओं के पीछे भागता बचपन भी याद आ जाता है।

पुष्पध्वज काल

जब 20–25 करोड़ वर्ष पूर्व कवचपंखियों का विकास हो रहा था, उसी समय इस जमीन पर पौधों की विकास श्रृंखला में एक क्रांतिकारी घटना हुई– बिना फूल वाले पौधों से पुष्पित पौधों का विकास। और परपरागण द्वारा पुष्पवनस्पति के विकास में सम्भवतः सर्वाधिक योगदान 'भृंगों' का ही था। 15 करोड़ से 6 करोड़ वर्ष पूर्व का काल आमतौर पर 'डायनासोर–काल' कहलाता था, क्या इसे 'पुष्पध्वज काल' या 'पुष्पकाल' कहना अधिक मधुर एवं सटीक न होगा ? इसलिए पुष्पों एवं भृंगों का सम्बन्ध उद्भवकाल से है, अत्यंत प्राचीन तो है ही। साहित्यिक भ्रमरों को चाहे लोलुप रसिक कहकर संतोषपूर्वक अपना अपराधबोध मिटा लें, किंतु वास्तविकता तो यह रही है कि भ्रमर तथा भृंग विकास के अनन्य साधक रहे हैं।

विष लोलुप मानव

जहाँ कवि भ्रमरों को रस–लोलुप कहते हैं, वहीं यदि भृंग कह सकते तो वे मनुष्य को विष–लोलुप कहते ! भृंग की एक जाति है लीफ़ बीटल (पत्र भृंग) जिसके डिम्भ अंडों से निकलने के बाद अपनी सुरक्षा के लिए एक विष भी पैदा करते हैं। कालाहारी मरुस्थल के 'बुश मैन' (गुल्म मानव) उन्हें मारकर, उसका विष

निकालकर अपने बाणों की नोंक पर लगाते हैं। बिना विष के वह बाण एक बड़े हरिण या मृग को सिर्फ एक खरोंच ही दे सकता है, किन्तु सूक्ष्मविष की मात्रा से ही वह बाण घातक हो जाता है।

जादूगर भृंग

भृंग की जातियों में विविधताओं के साथ विचित्रताएँ भी उतनी ही हैं। 'नमीब' मरुस्थल निवासी भृंग की एक जाति है 'जादूगर भृंग' क्योंकि जिस अद्‌भुत करामात से वह जल प्रबंध करता है वह सचमुच बड़ा जादू है। अफ्रीकी नमीब मरुस्थल में पानी ? क्या माँग रहे हैं आप, जाइए अपना मुँह धोकर आइए ! अगर बरसे तब तो पानी हो, कोई झील हो, कोई ओएसिस हो तो पानी हो, कहाँ हैं वे ? पर 'जादूगर' पानी का प्रबंध कर ही लेता है। उस मरुस्थल में भी सुबह ओस तो पड़ती है, किंतु वह थोड़ी सी ओस वह निठुर किंतु प्यासी रेत पी जाती है, किंतु उसका हलक भी शायद ही गीला होता हो, ओस भी ऊँट के मुँह में जीरे के समान ! यह जादूगर भृंग अलस्सुबह काफी देर निश्चल तपस्या करता है, तब ओस की दोचार छोटी छोटी बूँदें उसकी पीठ पर जम जाती हैं। तत्पश्चात् पीठ की उन बूँदों को पिया कैसे जाए ? जादूगर बहुत सम्हलकर लगभग शीर्षासन की मुद्रा बनाता है। वे बूँदें, स्वातिनक्षत्र की दुर्लभ बूँदों के समान, यदि शीर्षासन में त्रुटि न हो तो, उसके मुँह में आ जाती हैं– और उसकी दिनभर की प्यास बुझ जाती है। और सावधानीपूर्वक, सुबह की नम हवा को वह अपने कवच कपाट के भीतर छुपा लेता है।

भौरों (खेल) के समान भौंरे

कवच कपाटों के भीतर हवा भरकर भृंग की जलचर जातियाँ पानी के अन्दर अपनी चाल को सरल तथा तेज बना लेती हैं। छिपकलियों का मकानों की छतों पर उल्टा चलना उनकी अद्‌भुत क्षमता का प्रदर्शन करता है, किंतु पानी के अंदर, पानी की सतह को छत मानकर, उस पर उल्टा चलना ? यह तो छिपकलियों की चाल को बचकाना बना देता है ! जलचर भृंग की एक जाति यह करतब भी मज़े से करती है। एक और जाति होती है' गोताखोर भृंग' जो पानी में गोता लगाने में, तैरने में बहुत निपुण होती है, उसके पिछले पैर छोटी सी पतवार के आकार के होते हैं। गोताखोर भृंग के डिम्भ को 'जल बाघ' कहते हैं क्योंकि उसके शरीर का रंग पीला होता है तथा उस पर काली सी धारियाँ होती हैं। उसके यथा नाम, जबड़े बहुत पैने तथा शक्तिशाली होते हैं जिनसे वह मेंढकों के बैंगचियों (डिम्भ) का शिकार तो आसानी से कर लेता है, कभी कभी अपने से बड़ी मछलियों का शिकार भी। पानी की सतह के ऊपर भृंग की एक जाति 'घूर्ण भृंग' अक्सर देखने में आती है– छोटी चमकदार प्रगाढ़ नीली जो पानी की सतह के ऊपर लट्टू (भौंरा– देखिए रूपक उलटकर लग रहा है) जैसे घूर्णन करती रहती है। जैसे ही कोई छोटा जीव पानी के ऊपर गिरता है, इसके पहले कि वह संभल पाए, यह घूर्ण भृंग उसे दबोच लेते हैं।

एक किलो भृंग

भृंग का एक कुल होता है' सोनपंखी' कुल जिसे किसान और बागीची किलो के भाव से खरीदते हैं। सुंदर सोनपंखी (लेडी बग) भृंग सारे संसार में सुलभ है। सोनपंखी पौधों का नुकसान करने वाले नाश–जीवों को अपना आहार बनाते हैं। केवल एक मादा सोनपंखी अपनी संतति सहित एक ऋतु में 2 लाख तक जूं खा जाती है। प्रजनन ऋतु में सोनपंखियों के कुल के सदस्य एक जगह पर लाखों की संख्या में एकत्रित होते हैं, और व्यापारी लोग उन्हें वहाँ से बटोर लाते हैं।

सारंगीवादक भृंग

भृंगों के अनेक कुल गाना गाते हैं जिन्हें आम भाषा में भ्रमर कहते हैं। किंतु अधिक सही बात यह है कि भ्रमर गाना गाते नहीं हैं वरन अपने पंखों को ('पर' नहीं, जो केवल पक्षियों के होते हैं) अपने पेट से या कपाटों से सारंगिये की तरह रगड़कर, संगीत पैदा करते हैं। इन गुंजनों से ये आपस में जानकारी का आदान प्रदान करते हैं, नर मादा को अपने संगीत से लुभाते भी हैं। भृंगों के प्रेम परखने तथा प्रदर्शित करने के 'रिचुअल' (संस्कारित विधियाँ) होते हैं। 'विदूषक' जाति के भृंग पहले अपने लम्बे अंगों से (एक हाथ दूर), एक दूसरे से डरते हुए से, फिर भी आगे बढ़ते हुए से एक दूसरे से

परिचय प्राप्त करते हैं, तब कहीं प्रेमालाप इत्यादि होता है। इनका प्रेम तीव्र भी होता है, इनकी कुछ जातियाँ एकपत्नीक भी होती हैं। 'कछुआ' भृंगों (कछुआ और भृंगों के शरीर की ऊपरी बनावट में कवच ही रहते हैं, इसलिए भृंगों की कोई जाति कछुआ सरीखी दिख जाए, इसमें क्या आश्चर्य !) की मादाएँ अपने शिशुओं को भयंकर आक्रमणकारी चीटों से बचाने के लिए उनसे युद्ध के लिए खड़ी हो जाती हैं।

400 किमी0 प्रति घंटा

भृंग चाहे कद में छोटे होते हैं (वैसे उनकी जैविक सफलता का एक कारण यह भी है) किन्तु ताकत में अपने कद से सैकड़ों गुना बड़े होते हैं। एक जाति 'बाघ भृंग' शिकार करते समय 60–70 सेमी प्रति सेकेंड के वेग तक पहुँच जाती है। यदि धावक–घोड़ों से इनके शरीर की लम्बाइयों के अनुपात में तुलना की जाए तो धावक–घोड़ों को इनकी बराबरी करने के लिए 400 किमी0 प्रति घंटा के वेग से दौड़ना पड़ेगा। इनकी एक जाति 'हरक्युलीज' भृंग लगभग 15 सेमी0 लम्बी होती है। इनका कद ही इस नाम को सटीक कर सकता है, किंतु इनकी ताकत भी नाम के साथ न्याय करती है। जब इनके दो नरों में प्रजनन प्रतिस्पर्धा होती है, तब पहले तो देखते ही ये घोर गर्जन (भृंग संसार का) करते हैं, तब अखाड़े में उतरे हुए पहलवानों की चाल चलते हैं, और फिर दाँव लगते ही एक दूसरे को अपने सींगों से पकड़कर पटखनी देकर चारों खाने चित्त कर देता है।

शववासी भृंग

प्रकृति संरक्षण के लिए पर परागण तथा नाशक कीटों का नाश करने के अतिरिक्त ये सफाई भी बहुत करते हैं। इनकी अधिकांश जातियाँ सड़े गले मांस तथा वनस्पति को अपना आहार बनाते हैं। गुबरैले भृंग तो सड़े गोबर में ही अपने अंडे देते हैं। प्राचीन मिस्र में ऐसे गुबरैले को पवित्र मानते थे। 'बैरीइंग बीटल' (शववासी भृंग) मृत जानवरों तथा पक्षियों के भीतर घुसकर अपने डिम्भों को सामिष आहार देते हैं। किंतु कुछ भृंग जातियाँ ऐसी भी हैं जो वनस्पति के लिए हानिकारक भी हैं, जैसे 'कोलोरेडो आलू–भृंग हजारों टन आलू की फसल खराब कर देते हैं। और अभी तक युद्ध में ये वैज्ञानिकों को हराते आए हैं, उनके प्रत्येक विष का इनके पास काट निकल आता है। 'ब्लिस्टर बीटल' (छाला भृंग) के स्पर्श मात्र से हमारी त्वचा पर पीड़ादायक फफोले उभर आते हैं। 'बंबार्डिये बीटल' (बमवर्षक भृंग) अपने दुश्मन पर अपनी पिछाड़ी से उबलते रसायन की पिस्तौल चलाता है। लेकिन कुल मिलाकर, लगभग 25 करोड़ वर्षों से भृंगों ने प्रकृति के साथ अत्यंत लाभदायक रिश्ता ही निभाया है।

आजकल प्रकृति संरक्षण के लिए इनका महत्वपूर्ण उपयोग हो रहा है। प्रकृति प्रदूषण से मानव को जो नुकसान होता है वह बड़ी कठिनाई तथा विलम्ब से पता चल पाता है। इसीलिए, पक्षियों के अध्ययन से यह कार्य किया जा रहा है। अध्ययन से पता चलता है कि भृंग, एक तो, प्रदूषण से शीघ्र प्रभावित होते हैं, दूसरे, इनके द्वारा प्रदूषण के कारणों का बारीकी से पता चल जाता है क्योंकि पौधे के प्रत्येक अंग यथा जड़, तना, शाख, पत्ती, फल, फूल तथा बीज आदि के साथ अलग अलग भृंगों का सम्बंध होता है, और तीसरे वे सारे संसार में, सभी स्थानों पर बड़ी संख्या में सुलभ हैं। इसलिए आजकल प्रकृति का बुखार नापने के लिए भी भृंगों का उपयोग अच्छे थर्मामीटर की तरह किया जा रहा है।

एयर वाइस मार्शल (सेवानिवृत्त)
ई 143, खंड 21, नोएडा
201301

इक्कीसवीं सदी में डिजिटल पुस्तकालय

✍ बलराम यादव

नई सदी में सम्पूर्ण विश्व परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। पुस्तकालय भी इससे अछूते नहीं हैं। यह वास्तविकता है कि समय और परिवर्तन के साथ आगे बढ़ने के लिए नई नई राहें खोजनी पड़ती हैं। समय के साथ ही हमारे पुस्तकालय भी आधुनिक तकनीकों से सजने सँवरने लगे हैं। विश्व के अग्रणी देश ही नहीं, भारत भी आधुनिक प्रौद्योगिकी को अपनाकर परम्परागत पुस्तकालयों को डिजिटल पुस्तकालय के रूप में प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया है जिसका अनूठा उदाहरण है, हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय द्वारा स्थापित देश का प्रथम डिजिटल पुस्तकालय।

सूचना क्रान्ति के इस युग में सूचनाओं का महाविस्फोट इंटरनेट के माध्यम से हो रहा है। वास्तव में इंटरनेट विश्व भर में फैली हुई लाखों कम्प्यूटर प्रणालियों से निर्मित एक संयुक्त सृष्टि है जो विश्व भर में करोड़ों उपयोगकर्ताओं को चुटकियों में एक दूसरे से जोड़ती है। इस सूचना क्रान्ति के युग में वे जमाने लद गए जब पुस्तकालय महज किताबों का भण्डार हुआ करते थे और वहाँ तक पहुँचने वाले या तो अध्यापक होते थे या शोधछात्र। सूचना टेक्नोलॉजी ने आज के पुस्तकालयों का स्वरूप पूरी तरह से बदल कर रख दिया है। अब जबकि सर्वशिक्षा पर जोर दिया जा रहा है तो पुस्तकालयों का महत्व और भी बढ़ गया है। सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हाल ही की प्रगति से पुस्तकालय सेवाओं में भारी सुधार हुआ है। इंटरनेट क्रान्ति ने सूचनाओं को इलेक्ट्रानिक रूप में आम आदमी तक सुलभ बना दिया है। इतना ही नहीं, सूचना टेक्नोलॉजी के प्रवाह से आज कागजरहित कार्यालय, डिजिटल लाइब्रेरी (पुस्तकालय) और आभासीय पुस्तकालय सामने आए हैं।

'ज्ञानसम्पन्न समाज' में ज्ञान के प्रबन्धन के कार्य से जुड़ा प्रत्येक व्यक्ति डिजिटल प्रक्रियाओं और डिजिटल पुस्तकालयों की बात करने लगा है, क्योंकि बड़े पैमाने पर सूचनाओं को सहेज कर रखने के लिए डिस्क स्टोरेज स्पेस वाले कम्प्यूटरों के उपलब्ध हो जाने से अब सूचना को डिजिटल या कम्प्यूटरों की अंक भाषा में संकलित करके रखना सम्भव हो गया है। अब लोग माँग करने लगे हैं कि उन्हें सूचनाएँ कलात्मक दृष्टि से आकर्षक रूप में उपलब्ध कराई जाएँ।

डिजिटल पुस्तकालय

डिजिटल पुस्तकालय, पुस्तकालय के पुराने अर्थों में मात्र पुस्तकों का संग्रह नहीं अपितु मल्टीमीडिया प्रणालियों के नेटवर्क का नाम है। किसी भी डिजिटल पुस्तकालय में एक मीडिया सर्वर (आपस में सम्बद्ध वर्कस्टेशन्स का समूह) होता है जो उच्च गति वाले नेटवर्क से जुड़ा रहता है। एक ओर जहाँ परम्परागत पुस्तकालय में आने वालों को विभिन्न स्रोतों से भौतिक सामग्री उपलब्ध कराई जाती है, वहीं डिजिटल लाइब्रेरी

बहुत से कम्प्यूटरों के समूह में सहेज कर रखी गई सूचनाओं का भण्डार है जिसका उपयोग डिजिटल रूप में विश्व के किसी भी कोने में बैठकर एक ही संग्रह भण्डार के रूप में कम्प्यूटर पर किया जा सकता है। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय की बर्कले लाइब्रेरी अलग अलग सूचना स्रोतों का समूह है जो सूचनाएँ जुटाने वालों द्वारा उपलब्ध कराया जाता है और जिसका उपयोग स्वतःसंचालित प्रणाली के माध्यम से किया जाता है। समन्वित डिजिटल लाइब्रेरी से एक ऐसा माहौल बनाया जा सकता है जिसमें निजी सूचना संकलन से लेकर परम्परागत पुस्तकालयों के संग्रहों और बड़े पैमाने पर डाटा संग्रह तक सब कुछ आपस में सम्बद्ध होंगे और इसका उपयोग वैज्ञानिक विद्यार्थी मिलकर कर सकेंगे।

इन्टीग्रेटेड वर्चुअल लाइब्रेरी (समन्वित आभासीय पुस्तकालय)

ये कई प्रकार की नई सेवाएँ उपलब्ध कराते हैं। इनके माध्यम से नेटवर्क रूप में संकलित सूचनाओं को प्राप्त किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि डिजिटल लाइब्रेरी में सूचनाएँ आवश्यकतानुसार उपयोग करने वालों के कम्प्यूटर स्क्रीन पर उसी तरह प्राप्त की जा सकती हैं जिस तरह पेट्रोल गाड़ियों में पेट्रोल समाप्त होने के पूर्व ही पेट्रोल डाल दिया जाता है।

पुस्तकालयों के पास वित्त और कर्मचारियों की भारी कमी को ध्यान में रखते हुए किसी भी पुस्तकालय के लिए विभिन्न विषयों से सम्बन्धित पुस्तकें एवं पत्र–पत्रिकाएँ मँगाना सम्भव नहीं है। इन्हीं परेशानियों से छुटकारा पाने के लिए डिजिटल पुस्तकालय का विकास आज भारत जैसे देश में व्यापक पैमाने पर किए जाने की आवश्यकता है। पुस्तकालय के संसाधनों का मिलजुल कर दोहन करने तथा नेटवर्क तैयार करने की अवधारणा ने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए जन्म लिया है। अब चूँकि सूचनाओं को डिजिटल (अंक भाषा) रूप में बदलना संभव हो गया है, इसलिए पुस्तकालय आपसी सहयोग के कार्यक्रम के तहत अपने संकलनों को इलेक्ट्रानिक रूप देकर नेटवर्क से जोड़ने में लगे हैं।
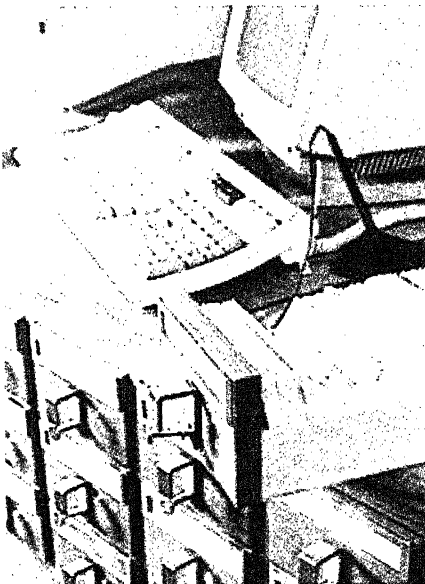
सूचनाओं के इलेक्ट्रानिक रूप में स्थानांतरण की तकनीक बड़ी तेजी से विकसित हो रही है। इलेक्ट्रानिक पब्लिशिंग, इलेक्ट्रानिक स्टोरेज, प्रोसेसिंग और पाठ व चित्र सहित सूचनाओं के वितरण की प्रणालियाँ आज न केवल पूरी तरह व्यवहारिक रूप ले चुकी हैं, बल्कि इनका उपयोग भी शुरू हो गया है। इतना ही नहीं, आज डिजिटल रूप में संकलित अधिकांश सूचनाओं को कागज पर प्रस्तुत किया जाता है। चूँकि तैयार सूचनाओं को तेज रफ्तार से खोजने की बड़ी जरूरत है, इसलिए डिजिटल लाइब्रेरी ही इस समय पुस्तकालयों का सबसे उपयुक्त साधन है। एक अनुमान के अनुसार सम्पूर्ण विश्व में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की ही करीब 50 हजार से अधिक पत्र–पत्रिकाएँ छपती हैं। सूचनाओं का विस्फोट किसी एक विषय तक सीमित नहीं है। दुनिया के प्रत्येक देश में सूचनाओं का विस्फोट इसी तरह से हो रहा है। इन सूचनाओं को जनसामान्य तक पहुँचाने के लिए डिजिटल पुस्तकालय का नेटवर्क काफी सहायक हो सकता है।

आज सूचना क्रान्ति का बिगुल सारे संसार में बज रहा है। यह आज की संस्कृति तथा कल के भविष्य को परिलक्षित करेगा। अतः इस प्रकार की प्रौद्योगिकी को अपनाने के लिए कुछ उपकरण एवं टेक्नोलॉजी की आवश्यकता पड़ती है जिन्हें इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है :–

1. **कम्प्यूटर टेक्नोलॉजीः** जिसके जरिए सूचनाओं का संकलन कर उन्हें डिजिटल रूप में परिवर्तित

किया जा सके। इसमें काम आने वाली युक्तियों में की बोर्ड, टच स्क्रीन, आवाज की पहचान करने वाली प्रणाली, सपाट सतह वाला स्कैनर, प्रतिलिपि बनाने में काम आने वाला उपकरण, उच्च विभेदन क्षमता वाला डिजिटल कैमरा और इमेज नेविगेटर साफ्टवेयर आदि शामिल हैं।

2. **स्टोरेज टेक्नोलॉजीः** इसके अन्तर्गत कई तरह की युक्तियाँ शामिल हैं जिनसे डिजिटल रूप में सूचनाओं की पुनर्प्राप्ति की जा सकती है। जैसे– मैगनेटिक टेप/कैसेट, फ्लापी डिस्क, हार्ड डिस्क, डीएटी टेप, सीडी गेम और स्मार्ट कार्ड आदि।

3. **प्रोसेसिंग टेक्नोलॉजीः** जिसके जरिए डिजिटल नेटवर्क की कार्यकुशलता के लिए सिस्टम और एप्लीकेशन साफ्टवेयर तैयार किया जाता है।

4. **संचार टेक्नोलॉजीः** जिसका उपयोग मूलतः डिजिटल रूप में सूचनाओं को भेजने में किया जाता है।

5. **डिस्प्ले टेक्नोलॉजीः** विभिन्न आउटपुट युक्तियाँ।

पहली प्रमुख प्रक्रिया समूचे भौतिक माध्यम को डिजिटल रूप में परिवर्तित करने की है। यह प्रक्रिया ऑप्टिकल कैरेक्टर रिकग्निशन (ओसीआर) से शुरू होती है जिसमें डिजिटल चित्रों को टेक्स्ट में बदला जाता है। इसके बाद इसका वर्गीकरण किया जाता है और फिर सूचीकरण किया जाता है ताकि इस संग्रह का उपयोग करने वालों को आसानी से उपलब्ध कराया जा सके। ग्रंथ सूची में दिए गए विवरण से उपयोग वाली सूचनाओं को आसानी से खोज सकते हैं। मल्टीमीडिया के रूप में संग्रहीत सामग्री जैसे– वीडियो के मामले में सूची के साथ वीडियो क्लिप के प्रीव्यू की व्यवस्था होती है जिसमें वीडियो फाइल के कुछ अंश होते हैं।

डिजिटल पुस्तकालय कुछ हद तक इंटरनेट की भाँति कार्य करेगा। अंतर केवल इतना होगा कि यह ग्रंथों, पत्र पत्रिकाओं व शोधपत्रों की सूचनाओं एवं लेखों से सम्बन्धित होगा, जबकि इंटरनेट के माध्यम से व्यावसायिक संगठनों से लेकर शैक्षिक व सामाजिक संस्थाओं के कार्यकलापों को एक दूसरे से जोड़कर आम जनता को सुलभ कराया जाता है।

डिजिटल पुस्तकालय की कार्य प्रणाली समझने के लिए इंटरनेट की भी चर्चा करना तर्कसंगत होगा। वर्ल्ड वाइड वेब (डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू) यानी इंटरनेट की शुरुआत 1992 में स्विट्जरलैंड में यूरोपीय कण भौतिकी प्रयोगशाला (सीईआरएल) में हुई थी। असल में यह इंटरनेट पर सूचना प्राप्त करने की एक सेवा है। डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू एक जैसी फाइलों के दस्तावेज हैं जो लिखित रूप में सूचना उपलब्ध कराने के लिए बनाई गई थी। इस विश्वव्यापी जाल (इंटरनेट– www) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम एक विज्ञान कथा लेखक विलियम गिब्सन ने गढ़ा था। हाइपर टेक्स्ट मार्कअप लैंग्वेज (एचटीएमएल) पर आधारित वर्ल्ड वाइड वेब (डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू) वेब टेक्नोलॉजी और अत्याधुनिक वेब ब्राउजर्स के विकास से सूचनाओं का उपयोग करने वालों को इसके माध्यम से क्लिक दबाते ही दुनिया भर के करोड़ों वेब सर्वर में उपलब्ध सूचनाएँ मल्टीमीडिया के रूप में चुटकियों में प्राप्त करना सम्भव बना दिया। हाइपरटेक्स्ट का अर्थ है– स्वाभाविक भाषाओं में उपलब्ध सूचनाओं का उनमें अंतर्निहित लिंक्स या संपर्क सूत्रों के साथ संयोजन जिससे अरैखिक सूचनाओं को प्राप्त किया जा सके और उन तक आसानी से पहुँचा जा सके। टेक्स्ट ग्राफिक्स और इमेजेज़ के रूप में बड़ी संख्या में सूचनाओं के खण्ड आपस में इलेक्ट्रानिक विधि से मिलकर एक अनिश्चित आकार का बहुआयामी डाटा बेस बनाते हैं जिसमें कोई भी सूचनाओं को अरैखिक विधि से पढ़ और लिख सकता है। हाइपरटेक्स्ट ट्रांसफर प्रोटोकॉल (एचटीटीपी) ऐसे नियमों की ओर निर्देश करता है जिससे वांछित सूचना हाइपरटेक्स्ट संपर्क के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है। इन नियमों या प्रोटोकाल से साधारण टेक्स्ट फाइलें, हाइपरटेक्स्ट और यहाँ तक चित्र भी सर्वर कम्प्यूटर से इस्तेमाल करने वाले के कम्प्यूटर तक लाए जा सकते हैं। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि एचटीटीपी डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू की एक आंतरिक आवश्यकता है और इसे अक्सर क्लायंट– सर्वर प्रोटोकाल कहा जाता है। इस प्रक्रिया में क्लायंट या ग्राहक (जो हाइपरटेक्स्ट डाक्यूमेंट का उपयोग करने वाला भी है) सर्वर (डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू मशीन) से आवश्यक सूचना माँग सकता है। ये सूचनाएँ सर्वर ऐसे फार्मेट में उपलब्ध करता है जिसे डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू ब्राउजर समझ सकता है। कहने का तात्पर्य है कि वेब सूचनाओं के प्रचार प्रसार का एक महत्वपूर्ण उपकरण है।

इसे निम्न उदाहरण द्वारा समझा जा सकता हैः http://www.vtls.edu.

या वेबसाइट : www.webduniya.com

इसमें http : प्रोटोकाल है।

www : वर्ड वाइड वेब यानी इंटरनेट को दर्शाता है।

vtls : किसी खास संगठन के नाम को दर्शाता है।

edu : एजूकेशनल यानि शैक्षिक संस्था को दर्शाता है जिसका वह साइट है।

दूसरे में .com : जिसका अर्थ है– कोई कॉमर्शियल यानी वाणिज्यिक संगठन का नाम है।

org : में प्रायः किसी स्वयंसेवी या बिना किसी मुनाफे के उद्‌देश्य से गठित संगठन को दर्शाता है।

उसकी मदद से विश्व के विभिन्न देशों के कम्प्यूटरों में संकलित सूचनाओं की फाइलों तक पहुँचकर सूचनाएँ अपने कम्प्यूटर पर प्राप्त की जा सकती हैं।

डिजिटल पुस्तकालय के कार्य

सूचना क्रान्ति के इस युग में सूचनाओं को संकलित कर तीव्र गति से आम लोगों तक पहुँचाने में डिजिटल पुस्तकालय काफी सहायक सिद्ध हो सकता है। इसके मुख्य कार्य निम्न हो सकते हैं :–

1. सूचना के विशाल भण्डार तक पहुँचकर सुलभ बनाना।

2. मल्टीमीडिया सामग्री जुटाना, नेटवर्क सुविधा।

3. उपयोग करने वाले के लिए सरल इंटरफेस उपलब्ध कराना।

4. डिजिटल सामग्री के बारे में विशेष संदर्भसेवा।

5. स्थानीय या बाहरी सामग्री (हाइपरटेक्स्ट) के साथ सम्पर्क सूत्र उपलब्ध करना।

6. सामग्री को खोजने और पुनर्प्राप्ति की उच्च प्रणाली।

7. दीर्घ अवधि के लिए सूचना उपलब्ध कराने की व्यवस्था।

8. परम्परागत पुस्तकालयों की सामग्री के संग्रह, विकास, संगठन, प्राप्ति और संरक्षण में मदद करना।

9. संपादन, प्रकाशन, टिप्पणी करने और सूचनाओं के समन्वय में सहायता। निजी, सामुदायिक, व्यावसायिक और सार्वजनिक डिजिटल पुस्तकालय संगठनों में आपसी तालमेल बैठाना।

लाभ

डिजिटल पुस्तकालयों के कुछ लाभों की भी चर्चा आवश्यक है :

परम्परागत पुस्तकालयों में भौतिक रूप से एकत्र की जाने वाली सूचनाओं के मुकाबले कहीं अधिक सूचनाएँ सरलता से प्राप्त हो सकती हैं।

अधिक उपयोग और ठीक से रख रखाव की सुविधाओं के अभाव में तेजी से खराब हो रही दुर्लभ पुस्तकों और पांडुलिपियों का संरक्षण डिजिटल पुस्तकालय के द्वारा आसानी से किया जा रहा है।

लोकल एरिया नेटवर्क का इस्तेमाल करके कई स्थानों से सूचनाएँ एकसाथ प्राप्त की जा सकती हैं।

डाउनलोड करने और छपाई की सुविधा, पुस्तकों के प्रकाशन और नए संस्करण निकालने में लगने वाली लागत और श्रम शक्ति की बचत।

किसी डाक्यूमेंट को कई लोग एकसाथ इस्तेमाल कर सकते हैं।

दस्तावेजों को सहेज कर रखने के लिए आवश्यक जगह की बचत तथा धरोहर के संरक्षण का एक अच्छा उपाय हो सकता है।

चुनौतियाँ

बौद्धिक संपदा अधिकारों का संरक्षण आज एक महत्वपूर्ण कार्य है। प्रशासनिक चुनौती कापीराइट और बौद्धिक संपदा के अधिकारों को लेकर है। इस बारे में पुस्तकालय अधिकारियों को प्रकाशकों के साथ गम्भीरतापूर्वक विचार विमर्श करना चाहिए, तभी उपयोग करने वालों और प्रकाशकों के साथ साथ पुस्तकों के लेखकों के हितों का संरक्षण हो सकेगा। इस मामले में डिजिटल पुस्तकालय की सुविधाओं का उपयोग करने वालों से सर्वर से सामग्री लेने, उसे डाउनलोड करने के लिए एक निश्चित शुल्क लिया जा सकता है। इससे प्रकाशकों, लेखकों और पुस्तकालयों, सभी को आमदनी होगी।

शेष पृष्ठ 47 पर
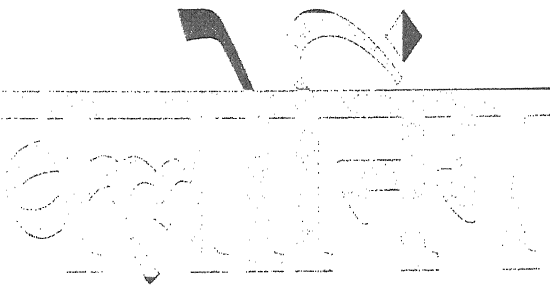
एम.पी. यादव

प्रोफेसर जगदीश चन्द्र बोस पहले वैज्ञानिक थे जिन्होंने बताया कि वनस्पतियाँ, जीवित जानवर तथा मानव सभी अपने जीवन क्रम में विभिन्न समानताएँ समेटे हुए हैं। अपने इस कथन के समर्थन में आपने विभिन्न प्रायोगिक प्रमाण प्रस्तुत किए उनके इन प्रयोगों का आधार जैव अथवा जैविक कोशिकाओं का पारिस्थितिक परिवर्तन था। इन अणुओं अथवा कोशिकाओं पर आधारित तकनीक को जैव तकनीक या बायोटेक्नोलॉजी नाम दिया गया। सन् 1953 में नोबेल पुरस्कार विजेता जेम्स वाट्सन एवं फ्रेनिस क्रिक द्वारा क्रिस्टलोग्राफी की मदद से डी.एन.ए. अणुओं की द्विकुण्डलित संरचना को ही बायोटेक्नोलॉजी की शुरुआत माना जा सकता है। प्रकृति से बनने वाले डी.एन.ए. अणुओं के मुख्य अवयव शर्करा, फास्फेट एवं विभिन्न क्रमों में व्यवस्थित नाइट्रोजन हैं, जिनमें ग्वानीन, साइटोसीन, थाइमीन एवं एडिनीन नामक चार क्षारक उपस्थित होते हैं। किसी भी वंशावली के बारे में सूचनाओं को संग्रहित करने की शक्ति विशाल संख्या में उन अनुक्रमों में होती है जिसमें ये क्षारक अपने आप को विभिन्न क्रमों में व्यवस्थित कर सकते हैं। किसी जीवित प्राणी के शरीर की सभी कोशिकाओं में आवश्यक रूप से एकसमान डी.एन.ए. अनुक्रमों की अद्वितीय (Unique) प्रतिलिपियाँ उपस्थित होती हैं, तथा क्रमों की आवर्तता विद्यमान होती है– जैसे AGGTCTATCAGG ...... जिन्हें हम 'जेनेटिक कोड' कहते हैं।

इस दिशा में डॉ0 हरगोविन्द खुराना एवं मार्शल द्वारा जेनेटिक कोडों की पहचान एवं उनका टूटना, मील का पत्थर साबित हुआ जिसके लिए 1967 में उन्हें नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया।

सामाजिक रुचियों के कारण इन उल्लिखित आविष्कारों की तरफ मानव का झुकाव हुआ तथा किसी इच्छित जीन का किसी शरीर में प्रत्यारोपण (Transplanting) की सम्भावनाओं से जेनेटिक इंजीनियरिंग अथवा क्लोनिंग की नींव पड़ी। दूसरे शब्दों में, क्लोनिंग का तात्पर्य जीन कोशिकाओं का अथवा पूरे जीव का गुणित मात्रा में प्रतिलिपिकरण है। इन सम्भावनाओं ने लगभग सभी जीवों अथवा उनके आदि रूपों के नए जीवन को विकसित करने के रास्तों को खोल दिया है। ये जीन, जीव के व्यवहार, जीवन

एवं उसके विपथगमन को निर्धारित करते हैं। जीन के उपर्युक्त गुणों के कारण ही जीन चिकित्सा की संभावनाएँ आवश्यक रूप से बढ़ गई हैं, जिनकी वजह से खतरनाक बीमारियों जैसे कैंसर, एल्जाइमर, पार्किन्सन एवं एच. आई.वी. के निदान की सम्भावनाओं के द्वार खुलते नजर आ रहे हैं। इसके सम्बन्ध में 1999 में 'नेचर मेडिसीन' में छपे लेख के सारांश को उल्लिखित करना समाचीन होगा जिसके अनुसार "माता पिता के केवल जीन में साधारण गड़बड़ी की वजह से उत्पन्न कैंसर जैसी खतरनाक बीमारियों के होने के पूर्व न केवल सम्भावनाओं का पता लगाया जा सकता है बल्कि आणविक दवाओं की मदद से उन पर काबू पाया जा सकता है।"

वर्ष 1997 में राशलिन इंस्टीट्यूट इडिनवर्ग में डॉ0 इयान विल्मुट के द्वारा डॉली नामक भेड़ के क्लोन का विकसित किया जाना एक ऐतिहासिक घटना थी। तत्पश्चात् मिली नामक बकरी, चूहे एवं सूअरों एवं बिल्लियों की क्लोनिंग करने की कोशिश की गई। 22 दिसम्बर सन् 2001 को ए0 एण्ड एम0 विश्वविद्यालय टेक्सास में Cc नामक बिलौटा का जन्म हुआ परन्तु खेद का विषय यह रहा कि Cc अपनी माँ का समरूप प्रतिलिपि नहीं था। कारण यह कि बहुरंगी त्वचा वाले पशुओं के रंगों का निर्धारण केवल जीन से ही नहीं, वल्कि गर्भाशय में हुई घटनाओं के द्वारा होता है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि क्लोन अपने माता पिता के आनुवांशिक तो होते हैं परन्तु यह जरूरी नहीं कि वे बिल्कुल समरूप हों। वैज्ञानिकों के इन्हीं समूहों ने कुत्तों की भी क्लोनिंग तैयार करने की कोशिश की परन्तु उन्हें लम्बे समय तक इसमें सफलता नहीं मिली। वह भ्रूण जिसमें से Cc नामक बिलौटे का शावक पैदा हुआ था उसे एक दूसरी माँ के गर्भाशय में आरोपित किया गया तो यह पाया गया कि जब 87 क्लोन किए हुए भ्रूणों को 8 मादा बिल्लियों के गर्भाशय में रोपित किया गया तो एक में गर्भधारण हुआ ही नहीं तथा केवल एक में क्लोन जीवित हुआ।

अब तक वैज्ञानिकजन क्लोनिंग किए हुए जानवरों के बारे में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। जैसा कि ज्ञात है कि क्लोन की हुई डॉली में 5 वर्ष की अवस्था में आर्थ्रराइटिस की बीमारी पैदा हो गई जबकि एक भेड़ की औसत आयु लगभग 13 वर्ष आँकी गई थी। जो अन्य बात देखने को मिली वह यह कि उसकी कुहनी (Elbow) में भी आर्थ्राइटिस हुआ तथा उसके बाद में घुटने (Knee) एवं कूल्हे (Hip) में हुआ।

उपर्युक्त बीमारी के होने से डॉ0 इयान विल्मुट कहते हैं कि इससे जैविक नियंत्रण के युग में जैविक तकनीक द्वारा किए जा रहे प्रयासों को धक्का लगा है। यह तो निश्चित है कि फार्म जानवरों की जैविक प्रतिलिपियाँ उत्पन्न करने से स्वस्थ जानवरों के साथ ही साथ हमें उत्पाद तो अच्छी तरह से मिलेगा, साथ ही साथ बायोटेक्नोलाजी में यह विकास सभी के लिए लाभदायक होगा।

सफलतापूर्वक सम्पन्न मानव क्लोनिंग के चेतावनीपूर्ण गम्भीर विचारों के कारण संसार के सभी देशों ने मानव क्लोनिंग की दिशा में किए जा रहे प्रयासों को प्रतिबंधित कर दिया है क्योंकि इससे न केवल मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं को बल्कि उसकी सुरक्षा को भी खतरा उत्पन्न हो सकता है।

जहाँ तक क्लोनिंग के आर्थिक पहलू का सवाल है– जानवरों में भी क्लोनिंग की क्रिया बहुत ही खर्चीली एवं जटिल है। बहुत कोशिश करने पर जब लगभग आधे क्लोनिंग किए हुए भ्रूण बिल्कुल आरोपण की स्थिति में पहुँच गए हों तो उसमें से केवल 1/10 ही जन्म लेने के लिए जीवित रहते हैं। जब ऐसे लगभग 100 केन्द्रकों को स्थानान्तरित किया जाए तो उसमें से केवल एक की क्लोनिंग सम्पन्न होने की सम्भावना होती है।

शोध छात्र
भौतिकी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

र्‌युमेटिक हृदय रोग

समस्या एवं निदान

✍ डॉ0 इरफ़ान अलीमी

यह रोग क्या है ?

यह एक प्रमुख हृदय रोग है जो आम तौर पर युवा पीढ़ी को अपना शिकार बनाता है। यह हृदय के वाल्व को प्रभावित करता है। इस रोग में हृदय के एक या एक से ज्यादा वाल्व खराब हो जाते हैं। वाल्व का घेरा संकरा हो जाता है या उसमें रिसाव आने लगता है। वाल्व के घेरे में संकरापन आने के कारण उसके रास्ते रक्त का प्रवाह कठिन हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप पूरा हृदय प्रभावित हो जाता है। रक्त के दौरे में आयी रुकावट के बावजूद हृदय की मांसपेशियाँ रक्त पम्प करने का निरन्तर प्रयास करती रहती हैं परन्तु हृदय भी एक सीमा के बाद थक कर हार मान लेता है। रोग बढ़ जाने पर वह फेल हो जाता है।

यह रोग कब और क्यों होता है ?

इस रोग की शुरुआत बचपन में ही हो जाती है। बचपन में गले का रोग जो 'स्ट्रेप्टोकोकाइ–ए–बैक्टीरिया' के संक्रमण के कारण हो जाता है। इसमें गला खराब हो जाता है या टांसिल में सूजन आ जाती है, बुखार भी आ जाता है जो कुछ समय बाद ठीक भी हो जाता है। परन्तु कुछ बच्चों को दो हफ्ते बाद र्‌युमेटिक बुखार हो जाता है जिसके कारण उसके जोड़ों में सूजन आ जाती है, दर्द रहता है और जकड़न हो जाती है। कभी एक जोड़ प्रभावित होता है तो कभी एक से अधिक जोड़ भी प्रभावित हो जाते हैं। इस रोग से ग्रस्त होने पर बुखार के साथ साथ दिल की धड़कन भी तेज हो जाती है। लेकिन कुछ समय तक कोई विशेष लक्षण नहीं दिखाई देते, रोगग्रस्त बच्चा केवल थकान का अनुभव करता है। इस रोग से ग्रस्त होने पर पहले एक जोड़ में दर्द होता है और सूजन आती है। उसके ठीक हो जाने पर दूसरे जोड़ में सूजन आ जाती है और दर्द होने लगता है लेकिन कुछ समय बाद सूजन खत्म हो जाती है और दर्द भी जाता रहता है। इस रोग के कारण जोड़ों पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है लेकिन हृदय अवश्य प्रभावित हो जाता है। उसके हर हिस्से में सूजन आ जाती है और यह रोग हृदय के एक या अधिक वाल्व पर अपनी छाप छोड़ जाता है। इस रोग के दुष्प्रभाव से कुछ बच्चों के वाल्व संकरे हो जाते हैं जिसे वेल्वयूलर स्टीनोसिस कहते हैं तो कुछ वाल्व ठीक तरह से बन्द नहीं होता और खून वापस लौटने लगता है। उस स्थिति को वेल्वयूलर रिगर्जीटेशन कहते हैं।
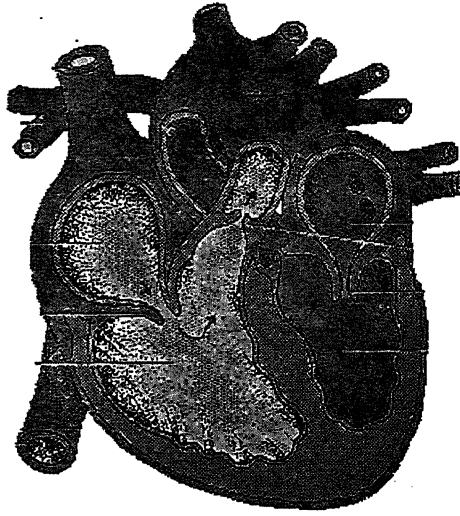
रोग के लक्षण कब दिखाई देते हैं ?

इस रोग के लक्षण कब और कितने समय बाद जाहिर होंगे, यह इस बात पर निर्भर करता है कि र्‌युमेटिक बुखार कब आया था, कितने समय तक रहा, बुखार कितना तेज था, बुखार के कारण वाल्व कितना क्षतिग्रस्त हुआ, हृदय में कितनी सूजन आई, वाल्व पर

कैल्शियम का जमाव कितनी तेजी से हुआ था। वैसे अधिकतर मामलों में रोग का लक्षण बीस वर्ष की आयु में जाहिर होने लगता है।

इस रोग में हृदय का कोई भी वाल्व क्षतिग्रस्त हो सकता है और उसमें विकृति आ सकती है, केवल पल्मोनरी वाल्व को छोड़कर। अधिकतर माइट्रल वाल्व ही रोगग्रस्त होता है। इस वाल्व में जब सिकुड़न पैदा हो जाती है तब उसे 'माइट्रल स्टीनोसिस' कहते हैं। जब तक सिकुड़न कम रहती है कोई विशेष कष्ट नहीं होता लेकिन जब सिकुड़न अधिक बढ़ जाती है तो तरह तरह की समस्याएँ पैदा होने लगती हैं। अधिक परिश्रम करने, बुखार होने, शरीर में खून की कमी होने एवं उत्तेजित होने पर हृदय की धड़कन बढ़ जाती है। गर्भवती महिलाओं के फेफड़ों की रक्त वाहिकाओं में रक्त का दबाव बढ़ने से खाँसी आने लगती है और साँस लेने में कठिनाई भी पैदा होने लगती है। जैसे जैसे वाल्व की सिकुड़न बढ़ती है, तरह तरह की परेशानियाँ पैदा होने लगती हैं, काम करना कठिन हो जाता है, साँस फूलने लगती है एवं खाँसी आने लगती है। कुछ रोगियों में दिल की धड़कन अनियमित हो जाती है जिसके कारण तकलीफ अधिक बढ़ जाती है। कुछ रोगियों में एंजायना का दर्द उठ सकता है, खाँसी के साथ खून के कतरे भी आ सकते हैं। जब यही खून के कतरे किसी धमनी में फँस जाते हैं तो शरीर के उस भाग में खून का दौरा रुक जाता है।

किसी भी वाल्व में खराबी आने पर दिल की धड़कन तेज हो जाती है, गर्दन की नसें फूल जाती हैं, पैरों में सूजन आ जाती है, फेफड़ों में पानी भर जाता है। हृदय का दायाँ पम्प भी अपना काम सुचारु रूप से नहीं कर पाता। रोगी की हालत नाजुक बनी रहती है।

एओर्टिक वाल्व के क्षतिग्रस्त होने पर दोनों तरह की खराबियाँ आ सकती हैं। साँस फूलती है, कामकाजी क्षमता घट जाती है, ज्यादा काम करने पर एंजाइना का दर्द भी उठ सकता है और रोगी अचेत भी हो सकता है। इस अवस्था को एओर्टिक स्टीनेसिस कहते हैं। वाल्व में फैलाव आने की सूरत में दिल की ध ड़कन तेज हो सकती है, साँस उखड़ सकती है, रात में अत्यधिक पसीना आ सकता है, एंजाइना का दर्द उठता है। इस अवस्था को एओर्टिक रिगजीटेशन कहते हैं।

इस रोग का निदान क्या है ?

रोगी की जाँच करने से ही रोग का पता लग जाता है क्योंकि वाल्व में आयी खराबी के कारण हृदय की आवाज बदल जाती है। इसके अतिरिक्त छाती का एक्स–रे और इलेक्ट्रोकार्डियोग्राम (ईसीजी) कराने से स्थिति स्पष्ट हो जाती है। ईको कार्डियोग्राफी एवं अल्ट्रासाउण्ड की जाँच से भी इस रोग का पता लगाने में सहायता मिलती है। इको कार्डियोग्राफी से रोग के कारण पैदा होने वाली खराबी को अच्छी तरह जाना जा सकता है।

रोग का उपचार क्या है ?

चूँकि इस रोग से वाल्व में विकृति आ जाती है और वाल्व में आई विकृति को दवाओं से ठीक नहीं किया जा सकता अतः दवाओं के द्वारा केवल रोग पर नियंत्रण रखा जा सकता है। इस रोग में पेनिसिलीन के टीके कारगर होते हैं। इस रोग का आखिरी इलाज ऑपरेशन ही होता है। ऑपरेशन कई तरह के होते हैं। यह एक चिकित्सक, रोग की गम्भीरता को ध्यान में रखकर तय करता है कि किस तरह का ऑपरेशन उचित होगा। कभी वाल्व की मरम्मत मात्र से काम चल जाता है तो कभी वाल्व को ही बदलना पड़ता है।

बचाव कैसे करें ?

यदि बचपन में गले में खराबी होने या टांसिल में सूजन आने पर उसकी सही ढंग से इलाज करा लिया गया तो आगे आने वाले इस गम्भीर व जानलेवा रोग से बचा जा सकता है।

सम्पादक, नवा–ए–तिब–ओ–सेहत
पो. बेगम सरांय, इलाहाबाद–15

बिन्दु से सिन्धु तक

डॉ0 हेमन्त पन्त

राजस्थान के अलवर जिले में सरिस्का के जंगलों में बसा एक छोटा सा गाँव है– देवरी। हर साल की तरह 1986 में भी देवरी में भयानक अकाल पड़ा था। कुएँ सूखे पड़े थे और खेती, पशुपालन सब चौपट हो गया था। गाँव के भंभूराम अपनी व्यथा कहने तरुण संघ के किशोरी स्थित कार्यालय में आए। इसके बाद ही वह जन आन्दोलन शुरू हुआ जिसने अलवर के इस सूखे और पिछड़े इलाके को दुनिया के मानचित्र पर ला दिया।

इससे कुछ साल पहले 1975 में जयपुर में कुछ शिक्षकों, शिक्षार्थियों और समाजसेवियों द्वारा अग्निपीड़ितों की सेवा हेतु तरुण भारत संघ का गठन किया गया था। धीरे धीरे विभिन्न क्षेत्रों के लोग संस्था से जुड़ने लगे। संघ के साथ कार्य कर रहे एक युवा कार्यकर्ता राजेन्द्र सिंह और उनके चार मित्रों को ऐसा लगा कि ग्रामीण पिछड़े क्षेत्रों में उनकी अधिक आवश्यकता है जहाँ आज भी अशिक्षा और ऊँच नीच जैसा सामाजिक कुरीतियाँ व्याप्त हैं। दृढ़संकल्प के साथ ये लोग अक्तूबर 1985 में अलवर जिले के एक अपेक्षाकृत पिछड़े गाँव किशोरी आ पहुँचे।

किशोरी गाँव और इसके आस पास का क्षेत्र अलवर जिले में तहसील थानागाजी का एक अपेक्षाकृत पिछड़ा क्षेत्र है। राजस्थान राज्य के उत्तर पूर्व में बसा थानागाजी मुख्य रूप से पहाड़ी क्षेत्र है और लोगों का प्रमुख व्यवसाय खेती और पशुपालन है। विश्वप्रसिद्ध सरिस्का राष्ट्रीय उद्यान भी इस क्षेत्र में है जो लगभग 1,145 वर्ग किमी0 क्षेत्र में फैला है। पिछले कई वर्षों से बाढ़ और मरुस्थल के फैलाव के कारण जहाँ एक ओर जंगल को नुकसान पहुँचा, वहीं जंगली जीव–जन्तुओं की संख्या में भी भारी कमी आई। अवैध खनन और सरकारी तंत्र की अनदेखी के चलते पूरा क्षेत्र विकास और जलवायु की दृष्टि से पिछड़ गया। अस्सी के दशक तक यह पूरा क्षेत्र सरकार द्वारा 'डार्क जोन' अर्थात् भू जल की अत्यधिक कमी वाला क्षेत्र घोषित था और इसके बावजूद भी इस समस्या निवारण हेतु गम्भीर प्रयास किए नहीं गए।

किशोरी गाँव पहुँचकर तरुण भारत संघ के कार्यकर्ताओं को जनता की वास्तविक समस्या का ज्ञान हुआ। गाँव में खेती, पशुपालन सब चौपट था और सभी मर्द दूसरे शहरों में मजदूरी करने को बाध्य थे। सबकी एक ही आवश्यकता थी– पानी। राजेन्द्र सिंह को यहीं से अपने जीवन का लक्ष्य दिखाई देने लगा। उनके अनुसार कठोर प्राकृतिक आपदाओं के सामने अडिग रहने वाले समाज से ही उन्हें इस कार्य की प्रेरणा और आत्मविश्वास प्राप्त हुआ।

भंगूराम की व्यथा सुनकर राजेन्द्र सिहं स्वयं देवरी गए। वहाँ की स्थिति भंगूराम द्वारा बताई गई स्थिति से कहीं बदतर थी। परन्तु विषम परिस्थितियों में बेहतर कार्य करने में सक्षम राजेन्द्र सिहं ने इसका स्थायी हल निकालने की ठानी और फिर वहीं के समाज में से जल संग्रहण के पारम्परिक तरीकों को ढूँढ निकाला गया। लोगों को इकट्ठा किया गया और जल संकट के स्थायी रूप से उबरने के लिए विस्तृत विचार हुआ जिसमें दो निर्णय लिए गए– जोहड़ या तालाब बनाने का काम शुरू किया जाए और सामलाती परम्परा को पुनर्जीवित किया जाए।

जल संग्रहण के लिए तालाब अथवा जोहड़ बनाने की परम्परा सदियों पुरानी है। तब गाँव बसने से पहले तालाब बनाए जाते थे, स्वयं समाज द्वारा। अनुपम मिश्र ने अपनी पुस्तक 'आज भी खरे हैं तालाब' में उस पुरातन सभ्यता को जीवंत कर सामने रख दिया है। पानी कहाँ से आता है, कितना पानी आता है, उसका कितना भाग रोका जा सकता है, ये सवाल नहीं होते थे।

समाज को साथ लेकर देवरी में सबसे पहले कारोजा वाला जोहड़ बनाने की तैयारी शुरू हुई। लोगों को एकजुट किया गया, हथेली और आँखों के जोहड़ का पूरा

नक्शा उतार लिया गया और जोहड़ तैयार हो गया। यह जोहड़ जनता का अपना था– अपना परम्परागत तकनीकी ज्ञान, अपना परिश्रम और अपनी विरासत। वर्षा में जोहड़ भर गया, आस पास के कुओं में पानी आ गया। गाँव की तस्वीर बदलने लगी और लोग गाँव को लौटने लगे। 1986 के सूखे देवरी की तुलना में आज के देवरी की बदली तस्वीर कुछ ऐसी है– 81 हेक्टेयर भूमि सिंचित, 18 में से 17 कुएँ भरे, 14 कुओं पर अथक पानी, जिनमें डीजल इंजन लगे हैं।

पुरातन काल में जल संग्रहण एवं संरक्षण मानव समाज का महत्वपूर्ण हिस्सा था और इसकी महत्ता आज कहीं अधिक है। जल संरक्षण के परम्परागत तरीकों में जोहड़, छोटा बाँध, एनीकट, टाँका, मेड़बन्दी, बावड़ी, चैक डैम आदि प्रमुख हैं। जोहड़ छोटे नाले आदि पर मिट्टी की बनी अर्धचन्द्राकार दीवार होती है जिसका प्रमुख उद्देश्य भूमिगत जल को बढ़ाना होता है। जोहड़ भर जाने पर पानी निकासी का रास्ता पत्थरों से बनाया जाता है। छोटा बाँध बड़े नालों पर सीधी, मजबूत दीवार के रूप में बनाया जाता है। एनीकट छोटे नालों पर बनी पत्थरों की पक्की दीवार होती है जिसके ऊपर से पानी बहता है। टांका कुएँ जैसा गोल या चौकोर गड्ढा होता है जिसमें मकान के ऊपर बरसा पानी इकट्ठा करके पीने के काम में लाया जाता है। रेगिस्तानी क्षेत्रों में पक्की बनी बावड़ियाँ पूरे वर्ष पीने का पानी उपलब्ध कराती हैं। चैक डैम तेज ढलाव पर पानी का बहाव रोकने और धरती का पुनर्भरण करने के उद्देश्य से बनाए जाते हैं। इसके अलावा मिट्टी और पेड़ भी जल संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

हमारे देश में वर्षा का लगभग 70 प्रतिशत पानी व्यर्थ ही बहकर चला जाता है। यदि इस पानी को सहेजा जाए और जोहड़ आदि द्वारा रोका जाए तो न सिर्फ पानी जमा होकर इकट्ठा रहेगा बल्कि कुओं, हैण्डपम्प, नलकूप आदि के लिए भी ऊँचा जलस्तर बनाए रखेगा। और फिर पानी का संरक्षण तो हमारी सभ्यता का हिस्सा रहा है। राजेन्द्र सिंह के अनुसार यह सारा ज्ञान आज भी समाज में मौजूद है, हालाँकि पिछले दो सौ सालों में यह ज्ञान दब गया है। सरकारी नीतियों में भी पानी के संरक्षण का जिम्मा सरकारी तंत्र का ही रहा है और परम्परागत तरीकों को उनमें आमतौर पर शामिल नहीं किया जाता है। इसी कारण 1987 में तैयार की गई राष्ट्रीय जल नीति सफल नहीं हो पाई। इस प्रकार की नीतियों को तैयार करने में जनता की अधिकाधिक भागीदारी सुनिश्चित की जानी आवश्यक है।

परम्परागत, सामलाती ज्ञान

पुराने समय के बने हुए तालाब आज भी देश के हर राज्य में मिल जाते हैं, अलग अलग नामों से। इन्हें बनाने वाले विशेषज्ञों का समाज में विशेष सम्मान होता था। 'गजधर' वास्तुकार होते थे और 'जोड़िया' उनके विश्वसनीय सहायक। दक्षिण भारत में तालाब 'एरी' बनाने में नीरघंटी हरिजन विशेषज्ञ थे तो पश्चिम में पालीवार ब्राह्मण। बिहार में मुसहर, पूर्वी उत्तर प्रदेश में लुनिया, मध्य प्रदेश में नौनिया और कोल आदि जाति के लोग इस कार्य में माहिर थे। माली, भील, अगरिया आदि कितनी ही जातियाँ इस काम में लगी थीं। परन्तु नए लोग जैसे जैसे तालाबों को भूलते गए, वैसे ही उनको बनाने वालों को भी। आज ढूँढने से भी तालाब बनाने का वर्णन किसी ग्रंथ में नहीं मिलता।

तरुण भारत संघ इसी ज्ञान को समाज में से ढूँढकर उसे कार्य रूप दे रहा है। महज 16–17 वर्षों में एक छोटे से गाँव से शुरू किया गया कार्य आज 750 से अधिक गाँवों में फैला है। ये गाँव 7 जिलों के 6500 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैले हैं। संघ अब तक 4500 से अधिक तालाब बना चुका है और इसके अथक प्रयासों से 5 विलुप्त प्रजातियाँ पुनर्जीवित हो गई हैं। सरिस्का क्षेत्र का उजड़ने की स्थिति में पहुँच चुका जंगल आज हरा भरा है और किसान खुशहाल हैं। इस महान कार्य के लिए संघ के महामंत्री राजेन्द्र सिंह को इस वर्ष के रेमन मैग्सेसे पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

जल हमारी सर्वोच्च आवश्यकता, हमारी अमूल्य निधि और प्रकृति द्वारा प्रदत्त वरदान है। इसे बचाना और सहेजना हमारा कर्तव्य है। दैनिक कार्यों में और सिंचाई आदि में यदि पानी का मितव्ययिता से उपयोग किया जाए तो हम अपनी धरोहर को भविष्य के लिए संचित कर रख सकते हैं। जरूरी है कि हम पानी को अपने हिस्से की जायदाद मानने की बजाय पूरे समाज और सृष्टि की सम्पदा मानें। एक एक बूँद बचाकर और एक एक बूँद सहेजकर ही हम अपनी पानी की जरूरत को पूरा कर सकते हैं।

124, शान्तिकुंज
अलवर–301001 (राज.)

मध्य प्रदेश में वैज्ञानिक जागरूकता
अनुकरणीय प्रयास

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

एकलव्य फाउंडेशन की जो त्रिवार्षिक रिपोर्ट (1998–2001) प्रकाश में आई है उसमें बताया गया है कि किशोर भारती तथा फ्रेन्ड्स रूरल सेन्टर के सहयोग से एकलव्य नामक संस्था की स्थापना 1972 में की गई। अब एकलव्य का मुख्यालय भोपाल में है किन्तु इसकी प्रारम्भिक गतिविधियाँ म०प्र० के होशंगाबाद शहर से ही साइंस टीचिंग प्रोग्राम से शुरू हुई थीं। सम्प्रति मध्य प्रदेश के 14 जिलों के 700 मिडिल स्कूलों में होशंगाबाद केन्द्र द्वारा तैयार किया गया विज्ञान कार्यक्रम लागू है जिसमें प्रतिवर्ष 1500 शिक्षकों तथा 100,000 छात्रों को विज्ञान का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके अन्तर्गत खोज करने, स्वतः कार्यशीलता दिखाने तथा पर्यावरण को ध्यान में रखते हुए बच्चे अग्रसर होते हैं। इस केन्द्र द्वारा 'बाल वैज्ञानिक' पुस्तकें संकलित की गई हैं जिसका संशोधन प्रत्येक 8–10 वर्षों बाद किया जाता है। इस तरह पुस्तकों के दो संस्करण हो चुके हैं। इन पुस्तकों की भाषा पर विशेष ध्यान दिया गया है। अब अंग्रेजी में भी यह पुस्तकमाला उपलब्ध है। पुस्तक में प्रयोगों पर बल है जिसके लिए आवश्यक सामग्री स्कूलों को दी जाती है– इन्हें 'किट सामग्री' कहते हैं।

मध्य प्रदेश के अन्तर्गत स्कूलों में विज्ञान शिक्षण का यह अभिनव प्रयोग सराहनीय है।

एकलव्य संस्था ने 1983 से अब तक 75 पुस्तकें प्रकाशित की हैं– अनुमानतः 10 नई पुस्तकें प्रतिवर्ष तैयार होती हैं। ये पुस्तकें पाठकों की माँग के अनुसार लिखी जाती हैं। पुस्तकें सचित्र होती हैं। कुछ रूसी तथा मराठी पुस्तकों के अनुवाद के रूप में हैं। पुस्तकों की 5–10 हजार प्रतियाँ छपती हैं। ध्यान रखा जाता है कि इनका मूल्य कम रहे जिससे बच्चे खरीद कर पढ़ सकें। इसके लिए पुस्तक मेले लगाए जाते हैं। भोपाल में पुस्तकों तथा वैज्ञानिक खिलौनों की दुकान 'पिटारा' नाम से खुली हुई है।

बच्चों की पत्रिका 'चकमक'

1985 में एकलव्य संस्था ने **'चकमक'** नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया जो बच्चों के लिए विशेषतया ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों के लिए पठन सामग्री प्रस्तुत करती आ रही है। इस पत्रिका के प्रथम अंक में 'भोपाल काण्ड' का वर्णन था। इस पत्रिका में कुछ विशेष स्तम्भ रहते हैं : 'मेरा पन्ना'– जिसमें बच्चों की रचनाएँ बिना किसी संशोधन के मूल रूप में छपती हैं। 'माथापच्ची' में पहेलियाँ दी जाती हैं। इसके अतिरिक्त हर एंक में 4–6 पृष्ठ की सामग्री वैज्ञानिक प्रयोगों से सम्बन्धित रहती है। पत्रिका में लिखने के लिए विशेषज्ञों की टीम है। इतने वर्षों से (85 अंक छप चुके हैं) निकलने के बाद एकाएक ग्राहक संख्या में कमी आई है।

शेष पृष्ठ 43 पर

ज्योतिष विवेक

आचार्य देवव्रत मीमांसक
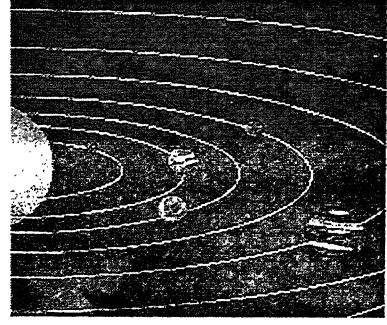
ज्योतिष को लेकर पक्ष में एवं विपक्ष में बहुत सारी बातें कही और लिखी जा रही हैं। इसके पक्ष में या विपक्ष में सोचने, लिखने एवं निर्णय की आशा करने से पहले ज्योतिष के स्वरूप पर विचार किया जाना चाहिए ऐसा मेरा विचार है। जब तक ज्योतिष के लक्षण का ज्ञान न हो तब तक उसकी सत्यता, असत्यता, आवश्यकता, अनावश्यकता पर वाद कैसे किया जा सकता है ? और वाद ही न हो तो निर्णय किसका होगा और क्या होगा ?

ज्योतिष के लक्षण

पहले हम ज्योतिष के लक्षण पर विचार करते हैं। ज्योति को एवं ज्योतिष्मान् लोकों को अधिकृत करके लिखा गया ग्रन्थ वा शास्त्र ज्योतिष कहलाता है। ज्योतिष्मान् लोक दो प्रकार के हैं। एक स्वतः ज्योति सूर्यादि, दूसरे परत् ज्योतिवाले पृथिवी चन्द्रादि। इनको लेकर जिस शास्त्र में विचार किया जाता है वह ज्योतिष शास्त्र है। पृथिवी, सूर्य, चन्द्र, उल्का, धूमकेतु, निहारिकाएँ क्या हैं ? इनकी उत्पत्ति किस उपादान से ? कब ? कैसे ? किसके द्वारा ? क्यों हुई है ? इनकी स्थिति कैसी है ? गति कैसी है ? इससे कब कहाँ कैसे परिवर्तन होते हैं ? इनके साथ मानव का क्या सम्बन्ध है ? क्षण, घाटी, प्रातः सायं, दिन, रात, शुक्ल, कृष्ण पक्ष, पूर्णिमा, अमावस्या, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग आदि काल कैसे बनाते हैं ? दिन, रात छोटे बड़े क्यों होते हैं ? पृथिवी क्या है इसका सूर्य एवं चन्द्र के साथ क्या सम्बन्ध है ? सूर्य क्या है उससे पृथिवी पर रहने वाले पदार्थों एवं मानवों के लिए क्या क्या प्राप्त होते हैं ? सूर्य से मानव के जीवन का सम्बन्ध कितना व्यापक है ? सूर्य से किन किन प्रयोजनों को सिद्ध कर सकते हैं ? सूर्य का अन्य ग्रहों के साथ क्या सम्बन्ध है ? उत्तरायण, दक्षिणायण क्या है और क्यों होते हैं ? भूमि क्यों घूमती है उसके घूमने से ऋतुओं की उत्पत्ति कैसी होती है? ऋतुएँ पृथिवी में कहाँ–कहाँ हैं? मनुष्य के शरीर के साथ एवं अन्न फल फूल औषधि पेड़ पौधों के साथ ऋतुओं का क्या सम्बन्ध है ?

चन्द्र क्या है ? चन्द्र से पृथिवी पर रहने वाले पेड़ पौधे मनुष्यादि प्राणियों को कौन सा लाभ होता है। उससे पृथिवी का क्या प्रयोजन सिद्ध होता है ?

पृथिवी की स्थिति कैसी है ? मानव के जीवन के साथ पृथिवी का क्या सम्बन्ध है ?

ग्रहण क्या है कितने हैं उनसे मनुष्य का क्या प्रयोजन सिद्ध होता है ? नक्षत्र क्या है ? कब किस पदार्थ के द्वारा, किसने क्यों बनाई है ? इससे मानव का कौन सा प्रयोजन सिद्ध होता है ? इसका अन्त है या नहीं, है तो कब क्यों और कैसे होगा ? इत्यादि बहुत सारे विषय हैं। इन को ज्योतिषशास्त्र विस्तृत रूप से बतलाता है। सृष्टि के स्वरूप का निरीक्षण करके बहुत सारे बुद्धिमान वैज्ञानिक बने हैं, आज भी बन रहे हैं, आगे भी बनते रहेंगे।

आज का अन्तरिक्ष विज्ञान उसी का परिणाम है। अंकगणित, रेखागणित, बीजगणित, अन्तरिक्ष यात्रा उसी की उपज है। यह विज्ञान बहुत विज्ञानों का आश्रय है। इसके विज्ञान से क्या क्या प्रयोजन सिद्ध हुए इसको बतलाना बहुत कठिन कार्य है। मुहूर्त, तिथि, वार, करण, नक्षत्र, योग, मास, युग, शकुन, स्वप्न, अंगलक्षण, हस्तरेखा, नवग्रह, राशि, कुण्डली, अंकज्योतिष आदि का फलविधान एवं भविष्यवाणियाँ ज्योतिष नहीं है। यदि नहीं है, तो फलित कैसे ज्योतिष कैसे कहा जा

सकता है ? जिसको फलित कहा जाता है वह किसी का फलित नहीं है केवल कल्पित है। सृष्टिक्रम एवं विज्ञान के अनुकूल नहीं है। अतः व्यवहार योग्य नहीं है। इसपर विश्वास करने से बहुत अनर्थ हुए हैं, हो रहे हैं। इसको सत्य मानने से मानव का आत्मिक, नैतिक, बौद्धिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्तर गिरा है। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं विश्व का पतन हुआ। मनुष्य दीन, हीन, आलसी, प्रमादी, क्रूर, निर्दयी, नास्तिक, विवेकहीन बना है।

संक्षेप में कहना हो तो ज्योतिषशास्त्र भूगोल, खगोल एवं भूगर्भ विद्या है। इस शास्त्र को पढ़ने से होने वाले लाभ और न पढ़ने से होने वाले अनर्थों को मैंने 'ज्योतिष विवेक' नामक ग्रन्थ में सविस्तार, सप्रमाण लिखा है। यहाँ केवल उनके शीर्षक लिखता हूँ।

ज्योतिष पढ़ने से होने वाले लाभ

1. सृष्टि विज्ञान 2. उपास्तिक्य 3 . तत्वज्ञान 4. अघमर्षण 5. वेदार्थज्ञान 6. वैदिक कालीन शब्दज्ञान 7. वेदनित्यमज्ञान 8. वेदरक्षा 9. ऊह 10. आगम 11. लघ्वर्थम् 12. असन्देहार्थम् 13. दिग्ज्ञान 14. देशज्ञान 15. कालज्ञान 16. गणित 17. देशभक्ति 18. फलित का अन्धकार निवारण 19. शिल्पज्ञान 20. लोकलोकान्तर गमन 21. इतिहासकाल निर्णय आदि।

न पढ़ने से हानियाँ

1. ज्योतिष को यथावत् नहीं जानने से वेदों के अर्थ को यथावत् नहीं जान पाता है। जिससे मानव वेदस्थ अमूल्य ज्ञान, विज्ञान से वंचित हो जाता है।

2. मकर संक्रान्ति आदि पर्वों को मनाने वाले भूलकर रहे हैं जिससे लाखों लोगों को व्यर्थ का श्रम, धनहानि होती है व अन्धविश्वास पनपते हैं। यह ज्योतिष को ठीक ठीक न जानने का ही परिणाम है।

3. मोक्ष का कारण शुभ कर्म नहीं माने जाते हैं अपितु उत्तरायण माना जाता है। अतः शुभ कार्यों का करना बन्द हो जाता है। जिससे मनुष्य समाज बुराई की ओर अग्रसर होता है।

4. ज्योतिष को न जानने से ब्रह्माद्वैतवाद सत्य प्रतीत होता है, जिससे मनुष्य अकर्मण्य बन जाता है। वीरता नष्ट होती है।

5. सृष्टि की उत्पत्ति किस प्रकार से, किस पदार्थ से होती है, इसको नहीं जान पाता है। अतः मानव अन्तरिक्ष विज्ञान में विकास नहीं कर पाता।

6. संसार कब तक रहता है इसको नहीं जान पाता है। संसार के स्वरूप का ज्ञान नहीं होता।

7. पृथिवी को दो सौ पैंतालीस करोड़ मील लम्बी मानी है।

8. पृथिवी गोल है वा चपटी है, स्थिर है वा चलती है आदि का ज्ञान नहीं हो पाता है।

9. काल का ज्ञान न होने से अनेक अज्ञानजनित बातों से युक्त ईस्वी, सन् को अपनाते हैं।

10. पृथिवी को शेषनाग, बैल की सींग आदि पर मानते हैं।

11. पृथिवी को स्थिर मानते हैं।

12. चन्द्र, सूर्य नक्षत्र, सूर्यचन्द्र ग्रहण आदि के विषय में भ्रान्ति होती है जिसके कारण बहुत सारे अन्धविश्वासों में फंसकर अनेकविध हानियों को प्राप्त होते हैं।

13. सूर्य के सात अश्व का विज्ञान नहीं जानते और हानि उठाते।

14. सूर्य, चन्द्रग्रहण क्यों होते हैं, कब होते हैं यह नहीं जानते।

15. देवासुर संग्राम विषयक भ्रान्ति, उससे अनर्थ, रोहिणीशकटभेद की मिथ्या कथा, अगस्त्य के समुद्र पान को अन्यथा समझना आदि अन्धविश्वास बने रहते हैं।

16. मतमतान्तरों की उत्पत्ति होती है।

17. समुद्र यात्रा नहीं कर सकते।

18. व्योमगामियों द्वारा लोकान्तर गमन न कर सकना आदि बहुत सारी हानियाँ हैं।

जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है ज्योतिष एक विद्या है उसको पढ़ना अनिवार्य है। जिसको फलित कहा है न वह विद्या है न ही ज्योतिष अतः उसका अध्ययनाध्यापन नहीं होना चाहिए इसी से मानवसमाज का हित निहित है।

आर्ष गुरुकुल
कामारेड्डी, आंध्र प्रदेश
503111

क्या ज्योतिष एक विज्ञान है ?

✍ विमलेश चन्द्र

आत्मा-परमात्मा, भूत-प्रेत, आस्तिक-नास्तिक, जीवन-मृत्यु, स्वर्ग-नरक, पुनर्जन्म, देवी देवता, राक्षस, ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति भगवान द्वारा या स्वयं प्रकृति द्वारा होने, राहु–केतु, ग्रहण इत्यादि की घटनाओं एवं विषयों की तरह ज्योतिष भी एक विवादित एवं अस्पष्ट विषय रहा है। इसलिए ज्योतिष के संबंध में भी स्पष्ट रूप से कुछ कह पाना काफी मुश्किल है। वैसे ज्योतिष विद्या को भारतीय विज्ञान एवं आस्था का आधारस्तम्भ माना जाता रहा है, और यह अनादि काल से ही भारतीय जनमानस एवं उसके विश्वास से जुड़ा रहा है। इसलिए धार्मिक कार्यक्रमों इत्यादि में भारतीय बहुसंख्यक वर्ग ने ज्योतिष को स्थायी मान्यता प्रदान की है।

इस लेख से हम जानने का प्रयास करेंगे कि ज्योतिष कितना वैज्ञानिक और कितना अवैज्ञानिक है। इसे विज्ञान कहा जाए या नहीं, यह भी एक विवादित विषय रहा है। जैसा कि हम जानते हैं कि विभिन्न ग्रहों एवं उनके उपग्रहों, नक्षत्रों की स्थिति एवं गति के कारण ग्रहण, ज्वार–भाटा, दिन–रात्रि, मौसम एवं जलवायु का परिवर्तन, हवाओं का परिवर्तन, भूकम्प की घटनाएँ घटित होती हैं। जब ग्रहों की स्थितियों एवं गति से यह सब प्राकृतिक परिवर्तन हो रहे हैं अथवा इन पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ रहा है तो स्वाभाविक एवं निश्चित है कि यदि हम मनुष्य या जीव जन्तु अपने को प्रकृति का हिस्सा मानते हैं तो निश्चय है कि ग्रहों, उपग्रहों, नक्षत्रों का प्रभाव हम पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पड़ेगा ही, भले ही हम इसे अनुभव करें या न करें। यदि हम मनुष्य तथा जीवजन्तु अपने को प्रकृति का हिस्सा मानें तो ग्रहों की स्थितियों एवं गति परिवर्तन का प्रभाव हमारे ऊपर नहीं पड़ेगा ऐसा तर्क के आधार पर माना जा सकता है किंतु हमारे मानने या न मानने से ग्रहों, उपग्रहों, नक्षत्रों के साथ हमारी पृथ्वी का जो ब्रह्मांडीय या आकाशीय संबंध है, उसमें तो कुछ बदलाव होने वाला है नहीं।

जहाँ तक ज्योतिष को मानने या न मानने की बात है इस बारे में हमारा भारतीय समाज दो वर्गों में बँटा हुआ है। एक वर्ग ज्योतिष को मानता है तथा दूसरा वर्ग नहीं। ज्योतिष मानने वालों के विषय में तर्क या प्रमाण दिए जाते हैं कि अनेक समाचारपत्रों, चैनलों, पत्र–पत्रिकाओं इत्यादि में दैनिक, साप्ताहिक, मासिक, वार्षिक राशिफलों का प्रकाशित–प्रसारित होना, शादी विवाह के मामलों में धार्मिक कार्यक्रमों, उद्घाटन कार्यक्रमों इत्यादि में ज्योतिषियों या पंडितों से पूछकर तथा उनसे अच्छा
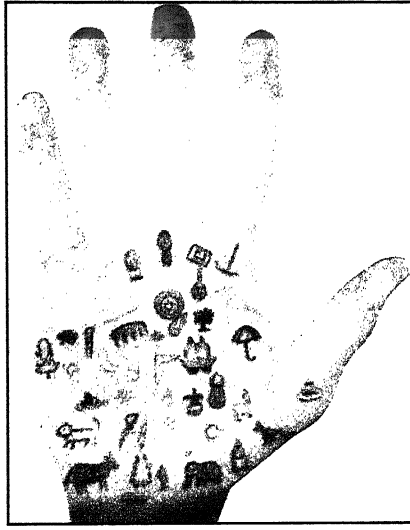
समय या मुहूर्त निकलवा कर आयोजित या सम्पन्न करना अपने आप में खुद एक प्रमाण है। विभिन्न ज्योतिषियों द्वारा भविष्यवाणी करके आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, प्राकृतिक, धार्मिक घटनाओं, दुर्घटनाओं, हत्या, सत्ता परिवर्तन, बड़े नेताओं या महापुरुषों की मृत्यु या उत्थान इत्याद संबंधी घटनाएँ समाचारपत्रों में नियमित प्रकाशित होती रहती हैं जिनमें से अनेक घटनाएँ पूर्णतः सत्य भी निकलती हैं। इससे स्पष्ट है कि ज्योतिष विद्या को हमारे भारतीय समाज में काफी महत्व दिया गया है और इसे स्थायी मान्यता भी दी गई है। यह अलग बात है कि कौन सा ज्योतिषी किस प्रकार की गणनाएँ करके किस प्रकार का परिणाम या भविष्यवाणी करता है।

जहाँ तक ज्योतिष को न मानने की बात है इस बारे में ज्योतिष को न मानने वालों का तर्क एवं विश्वास है कि ज्योतिष पूर्णतः गलत, अविश्वसनीय, अंधविश्वास तथा काल्पनिक है। उनका कहना है कि यह भी अंधविश्वासों एवं बुराइयों की तरह ही एक प्रकार का पाखण्ड है क्योंकि एक ही राशिफल या भविष्यफल, विभिन्न समाचारपत्रों में अलग अलग होते हैं तथा उनमें नाममात्र की भी समानता नहीं होती है। अधिकांशतः इन भविष्यफलों में जो लिखा होता है वह वास्तव में अनेक लोगों के साथ ठीक उल्टा या झूठा होता है। इसे एक उदाहरण से भी समझा जा सकता है कि यदि किसी एक राशि एवं नाम के दो व्यक्ति हैं तथा दोनों आपस में दुश्मन हैं तथा इस राशिफल का फल निकलता है कि 'दुश्मन पर विजय मिलेगी' तो यह समझ में नहीं आता है कि किसको किस पर विजय मिलेगी जबकि दोनों की राशि नाम समान है। इसी तरह ज्योतिष न मानने वालों का तर्क है कि यदि ज्योतिष तथा राशि सही हैं और यदि मुहूर्त निकलवाकर शादी विवाह करवाया जाता है तो सही समय पर शादी करवाने के बावजूद क्यों दूल्हा–दुल्हन दुर्घटनाग्रस्त हो जाते हैं ? क्यों बहू जलाकर मार दी जाती है ? क्यों विवाह के समय आँधी, पानी, तूफान, अग्निकांड, मारपीट, हत्या, झगड़ा इत्यादि घटनाएँ घट जाती हैं जबकि विवाह अच्छे मुहूर्त में पंडितों, ज्योतिषियों द्वारा बताए गए समय में कराया गया था। अच्छी राशि, अच्छे मुहूर्त, अच्छे पंडितों द्वारा विवाह कराए जाने के बावजूद उपर्युक्त घटनाएँ हो जाना तथा दम्पत्ति में आपसी व पारिवारिक लड़ाई तथा विवाहों का असमय ही टूट जाना, निश्चित रूप से ज्योतिषियों के पाखंडी होने का एक तार्किक सबूत दिया जा सकता है।

ज्योतिष से मतलब है, हस्तरेखा देखकर, पंचांग देखकर, ललाट देखकर, तोता से पत्ते खिंचवाकर या जन्म कुंडली देखकर या बनाकर विभिन्न प्रकार से भविष्य या ज्योतिष के बारे में बताए जाने वाली सूचनाएँ या घटनाएँ। ज्योतिष झूठा या सच्चा है यह आत्मा परमात्मा, जन्म, मृत्यु, स्वर्ग नरक, पुनर्जन्म, भूत प्रेत, आस्तिक, नास्तिक इत्यादि की तरह मानने या न मानने वालों के अपने अपने तर्क-वितर्क पर निर्भर है और इसका सुस्पष्ट उत्तर दे पाना किसी के लिए भी संभव नहीं है।

ज्योतिष विद्या विज्ञान है कि नहीं, इस पर भी वाद–विवाद है। कोई कहता है कि ज्योतिष एक विज्ञान है, कोई कहता है कि यह विज्ञान नहीं है। यदि यह विज्ञान है तो इसे विज्ञान विषयक पुस्तकों में शामिल क्यों नहीं किया गया है ?

निश्चय ही इधर ज्योतिषियों पर से लोगों का विश्वास घटा है तथा ज्योतिष के कारण हमारे समाज में मंहगाई की असीमित वृद्धि होना भी एक कारण है विशेष कर शादी विवाह के मामलों में। क्योंकि ये ज्योतिषी/पंडित अपने पंचांग के आधार पर तथा ग्रहों की कुछ खास स्थितियों एवं समय पर अच्छा मुहूर्त बताते हैं तथा उसी को अच्छा लगन बताते हैं जिससे कम समय में अधिक लोगों की शादी विवाह सम्पन्न होने से सामानों की कमी, सजावट व तड़क भड़क सामानों वाले दुकानदारों द्वारा मनमाना पैसा वसूलना, वाहनों का किराए पर न मिलना, वाहनों में अत्यधिक भीड़, एक ही समय में कई रिश्तेदारों के यहाँ शादी विवाह के कार्यक्रम होने से किसी एक व्यक्ति का सभी जगह न पहुँच पाना जैसी अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो

जाती हैं। इस समय अनेक समाचारों में पढ़ने सुनने को मिलता है कि दूल्हा–दुल्हन, बाराती इत्यादि नाव या वाहन उलटने या वाहनों की टक्कर में घायल हो जाते हैं या मर जाते हैं। यदि हम वर्ष भर के इन विवाहों को केवल कुछ माह में होने या करने के बजाय धीरे धीरे साल भर चलने देते तो सबको राहत मिलती, अनेक लोगों को वर्ष भर रोजगार मिलता, भागदौड़ कम होती, मूल्यों में कृत्रिम वृद्धि भी नहीं होती तथा लोग सभी जगह कार्यक्रमों समारोहों में समयानुसार पहुँच जाते तथा धीरे धीरे पैसों की व्यवस्था भी होती। इससे विवाह में होने वाले अधिकांश खर्चों में कटौती हो जाती इससे दुर्घटना और भागदौड़ तथा व्यय में भी कमी आती।

भला हो उन न्यायालयों का जो बिना किसी लगन या मुहूर्त के और बिना किसी अग्नि को साक्षी मानकर तथा अग्नि के सात फेरे लेने से बचा लेते हैं और साल भर शादी करवाते हैं जो अधिकतर मनपसंद, शांतिप्रिय, स्थायी व कम खर्चों में कानूनी रूप से सक्षम मान्यताप्राप्त होते हैं। भले ही यह विवाह अभी तक कुछ लोग ही मानते एवं अपनाते हैं।

रेलवे क्वार्टर–80/एम/ए,
पोस्ट भावनगरपुरा
जिला–भावनगर, गुजरात–364003

पृष्ठ 38 का शेष

स्रोत

समाचारपत्रों में विज्ञान सामग्री प्रकाशित हो इसके लिए एन.सी.एस.टी.सी. नई दिल्ली के अनुरोध पर 1987 से साइंस टेक्नोलॉजी फीचर सर्विस 'स्रोत' का शुभारम्भ एकलव्य संस्था द्वारा किया गया। यह हिन्दी में ऐसी पहली फीचर सर्विस है। इसके लेखों में भाषा पर विशेष बल रहता है। कठिन संस्कृत पर्यायों के बजाय मूल अंग्रेजी के शब्दों को स्थान दिया जाता है। इसके लिए करेंट साइंस, रेजोनेंसा, सेमिनार, हिन्दू आदि में छपे लेखों के भावानुवाद भी तैयार किए जाते हैं।

स्रोत का 146वाँ अंक मार्च 2001 में छपा था। इसके द्वारा 174 समाचारपत्रों तथा 300 मासिक ग्राहकों को फीचर भेजे जाते हैं।

सन्दर्भ

विज्ञान अध्यापकों तथा हाईस्कूल के छात्रों के लिए 1994 में एक द्विमासिक पत्रिका शुरू की गई। मार्च 2001 तक इसके 36 अंक छप चुके थे। यह पत्रिका न केवल हिन्दीभाषी क्षेत्रों में अपितु आसाम, गोवा तथा तमिलनाडु में भी पढ़ी जाती है और इसके लेख तेलुगू, कन्नड़, गुजराती तथा मराठी में अनूदित होते हैं। मध्य प्रदेश सरकार ने प्राइमरी शिक्षा के लिए 'सीखना सिखाना' पैकेज के लिए 'सन्दर्भ' को वरीयता दे रखी है। इसकी ग्राहक संख्या 5000 है। सन्दर्भ के जिल्दबन्द अंकों की काफी माँग है।

एकलव्य संस्था की स्थापना के समय ही विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने छः शिक्षक फेलोशिप प्रदान किए जाने की व्यवस्था कर दी थी। इसके अन्तर्गत एक से तीन वर्ष के लिए फेलोशिप प्रदान की जाती है।

संस्था को आत्मनिर्भर बनाने के लिए स्थायी कोष (Corpus) स्थापित करने की योजना चलाई गई जिसके फलस्वरूप इस संस्था ने चन्दा करके एक करोड़ से अधिक धनराशि संचित कर ली है। लक्ष्य 3 करोड़ राशि का है।

प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग

हिन्दुस्तानी अकादमी में प्रो0 मेनन का व्याख्यान

26 जुलाई 2002 को सायंकाल हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद के सभागार में आयोजित 'डॉ0 हरिमोहन स्मृति व्याख्यानमाला के अंतर्गत प्रख्यात वैज्ञानिक प्रो0 एम.जी.के. मेनन ने 'सूचना प्रौद्योगिकी' विषय पर व्याख्यान दिया।

प्रो0 मेनन ने इलेक्ट्रानिक्स तथा कम्प्यूटर तकनीक के इतिहास पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए कहा कि जिस प्रकार प्रयाग में नदियों की धाराओं का संगम होता है उसी प्रकार सूचना प्रौद्योगिकी विभिन्न तकनीकों का संगम है जो आज मानव जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित कर रही है। अंतरिक्ष विज्ञान, कम्प्यूटर विज्ञान, संचार तकनीक, इंटरनेट, ई–मेल आदि के समन्वय से सूचना प्रौद्योगिकी नित नए रूप में सामने आ रही है। तीव्र और सूक्ष्म इलेक्ट्रानिक पथों के विकास से स्थान एवं गति की सीमाएँ टूटती जा रही हैं। नैनो तकनीक का विकास इस दिशा में अगला क्रांतिकारी परिवर्तन सिद्ध होगा।

कार्यक्रम के अध्यक्ष इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो0 जी.के. मेहता ने कहा कि प्रौद्योगिकी का विकास मानव कल्याण के लिए होना चाहिए। प्रौद्योगिकी के साथ ही साथ मूलभूत विज्ञान का भी विकास आवश्यक है।

हिन्दुस्तानी अकादमी के अध्यक्ष श्री हरिमोहन मालवीय ने आरंभ में अतिथियों का स्वागत करते हुए अकादमी के इतिहास तथा अकादमी द्वारा प्रकाशित वैज्ञानिक साहित्य के बारे में बताया। विज्ञान परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ0 शिवगोपाल मिश्र ने डॉ0 मेनन का परिचय प्रस्तुत किया। इस अवसर पर उपस्थित वैज्ञानिकों ने अकादमी के पुस्तकालय का अवलोकन भी किया।

(चित्र पिछले आवरण पृष्ठ पर)

विज्ञान परिषद् प्रयाग की कार्यकारिणी की बैठक सम्पन्न

27 जुलाई 2002 को विज्ञान परिषद् प्रयाग की कार्यकारिणी की एक बैठक सभापति डॉ0 श्रीमती मंजु शर्मा की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। इस अवसर पर परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ0 शिवगोपाल मिश्र ने परिषद् की विभिन्न गतिविधियों से सदस्यों को अवगत किया तथा परिषद् की भावी कार्ययोजनाओं के बारे में विचार विमर्श कर सभापति से निर्देश प्राप्त किए। 'विज्ञान' मासिक को नया स्वरूप दिए जाने की योजना की सभी सदस्यों ने सराहना की।

इस अवसर पर परिषद् कार्यकारिणी के सभी सदस्यों के अतिरिक्त प्रो0 एम.जी.के. मेनन जी विशेष आमंत्रित अतिथि के रूप में उपस्थित थे।

बैठक के अंत में भारत के उप राष्ट्रपति डॉ0 कृष्णकान्त के आकस्मिक निधन पर सभी सदस्यों ने दो मिनट का मौन रखकर परिषद् परिवार की ओर से श्रद्धांजलि अर्पित की।

'विज्ञान भूषण' डॉ0 देवेन्द्र शर्मा का अभिनन्दन

27 जुलाई 2002 को विज्ञान परिषद् सभागार में आयोजित एक कार्यक्रम में 'विज्ञान' मासिक के पूर्व संपादक तथा गोरखपुर और इन्दौर विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति डॉ0 देवेन्द्र शर्मा का अभिनन्दन सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो0 एम.जी.के. मेनन के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर डॉ0 देवेन्द्र शर्मा के सम्मान में प्रकाशित 'विज्ञान' मासिक के जुलाई 2002 विशेषांक का लोकार्पण भी प्रो0 मेनन ने किया।

यद्यपि इस कार्यक्रम को समारोहपूर्वक आयोजित करने की सभी तैयारियाँ विज्ञान परिषद् ने

कर रखीं थीं किन्तु उसी प्रातः भारत के उप राष्ट्रपति डॉ0 कृष्णकान्त जी के आकस्मिक निधन के कारण राष्ट्रीय शोक घोषित हो गया। चूँकि आयोजन को तत्काल स्थगित करना संभव नहीं था और बाहर से आने वाले सभी अतिथि पधार चुके थे इसलिए इस कार्यक्रम को अत्यन्त सादगीपूर्वक सम्पन्न किया गया।

कार्यक्रम के आरंभ में डॉ0 प्रभाकर द्विवेदी ने सरस्वती की प्रतिमा पर माल्यार्पण किया। तत्पश्चात् परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ0 शिवगोपाल मिश्र ने अतिथियों का स्वागत करते हुए विशेषांक के प्रकाशन की योजना पर प्रकाश डाला और डॉ0 देवेन्द्र शर्मा जी का संक्षिप्त जीवन परिचय प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् प्रो0 मेनन ने डॉ0 शर्मा को तिलक लगाकर तथा अंगवस्त्रम् पहनाकर सम्मानित किया और नारियल तथा स्मृति चिन्ह प्रदान किया। इसके उपरांत 'विज्ञान' के डॉ0 देवेन्द्र शर्मा सम्मान अंक का लोकार्पण प्रो0 मेनन ने किया।

इस अवसर पर प्रो0 शर्मा के शिष्य तथा गोरखपुर विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो0 राधेमोहन मिश्र ने डॉ0 शर्मा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विभिन्न पक्षों को उजागर करते हुए अनेक रोचक संस्मरण प्रस्तुत किए। सीएसआईआर के पूर्व महानिदेशक प्रो0 एस.के. जोशी तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो0 वी.डी. गुप्त ने भी प्रो0 शर्मा से अपने दीर्घकालीन संबंधों के अनेक प्रेरक संस्मरण प्रस्तुत किए। कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि प्रो0 मेनन ने कहा कि डॉ0 शर्मा जैसे आदर्श शिक्षकों की आज शिक्षा जगत व देश को आवश्यकता है और हमें उनके जीवन से प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए।

प्रो0 देवेन्द्र शर्मा ने अपने उद्‌बोधन में इलाहाबाद विश्वविद्यालय और विज्ञान परिषद् प्रयाग से अपने लंबे संबंध का स्मरण करते हुए परिषद् के प्रति आभार प्रकट किया और परिषद् को हिन्दी एवं विज्ञान की सेवा के मार्ग पर सतत् अग्रसर रहने की कामना व्यक्त की।

परिषद् की सभापति डॉ0 श्रीमती मंजु शर्मा ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि डॉ0 शर्मा का सम्मान उन आदर्शों का सम्मान है जिनपर वे जीवनपर्यन्त चलते रहे और अपने शिष्यों को भी चलने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने प्राचीन भारतीय गुरुशिष्य परंपरा को जीवित रखा।

अंत में परिषद् के उपसभापति प्रो0 हनुमान प्रसाद तिवारी ने सभी अतिथियों के प्रति आभार एवं धन्यवाद ज्ञापित किया। कार्यक्रम का संचालन देवव्रत द्विवेदी ने किया।

जैव प्रौद्योगिकी लोकप्रिय व्याख्यानमाला का प्रथम व्याख्यान सम्पन्न

1 अगस्त 2002 को पूर्वाह्न काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के स्कूल आफ बायोटेक्नोलॉजी के सभागार
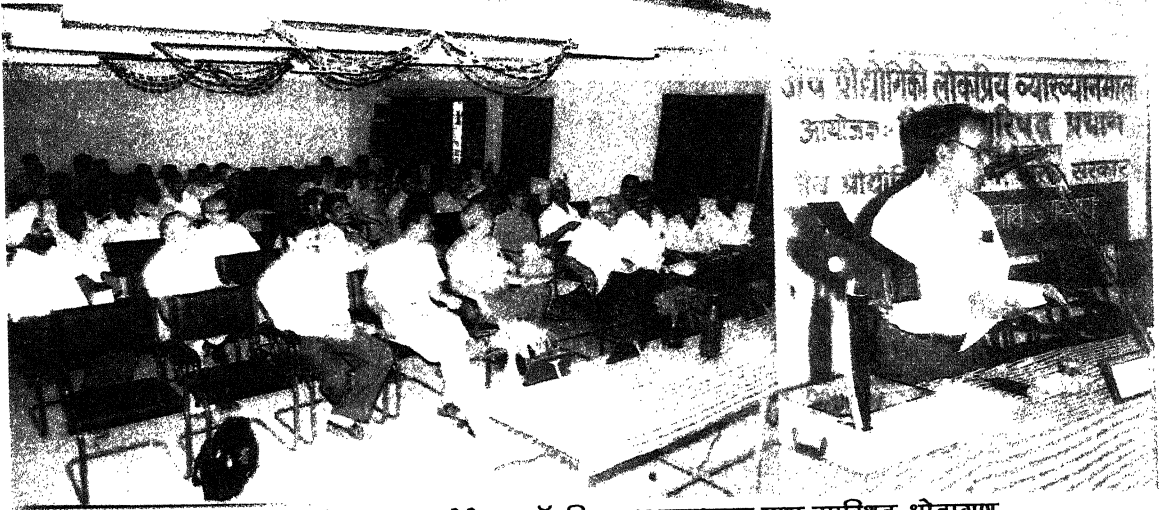
जैव प्रौद्योगिकी व्याख्यान देते हुए डॉ. सिद्दनाथ उपाध्याय तथा उपस्थित श्रोतागण

में विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा आयोजित तथा जैव प्रौद्योगिकी विभाग भारत सरकार द्वारा समर्थित जैव प्रौद्योगिकी लोकप्रिय व्याख्यानमाला का प्रथम व्याख्यान प्रौद्योगिकी संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में रसायन अभियांत्रिकी के प्रोफेसर डॉ0 सिद्धनाथ उपाध्याय द्वारा 'जीवाणु प्रेरित संक्षारण' विषय पर दिया गया। प्रो0 उपाध्याय ने हिन्दी में दिए इस व्याख्यान में संक्षारण के सैद्धान्तिक पक्ष तथा जीवाणुओं के कारण होने वाले संक्षारण की समस्या, कारण व बचाव की विधियों का विस्तृत विवरण अत्यंत रोचक शैली में पारदर्शियों के माध्यम से श्रोताओं के सामने रखा।

कार्यक्रम के आरंभ में स्कूल आफ बायोटेक्नोलॉजी के संयोजक प्रो0 अजीत सोढ़ी ने उपस्थित अतिथियों एवं श्रोताओं का स्वावगत करते हुए जैव प्रौद्योगिकी के नए आविष्कारों की चर्चा की। विज्ञान परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ0 शिवगोपाल मिश्र ने व्याख्यानमाना के आयोजन के उद्देश्य तथा पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला। स्कूल आफ बायोटक्नोलॉजी के प्रो0 बी.डी. सिंह ने व्याख्यानदाता प्रो0 उपाध्याय का परिचय प्रस्तुत किया। सभा की अध्यक्षता कर रहे विज्ञान संकाय के पूर्व संकायाध्यक्ष प्रो0 डी.के. राय ने कहा कि वैज्ञानिकों तथा अभियांत्रिकीविदों को मिलजुल कर जैव प्रौद्योगिकी के विकास के लिए कार्य करना चाहिए जिससे मानवता का कल्याण हो सके।

अंत में देवव्रत द्विवेदी ने विज्ञान परिषद् की ओर से सभी के प्रति आभार ज्ञापित किया। कार्यक्रम का संचालन प्रो0 बी.डी. सिंह ने किया।

– देवव्रत द्विवेदी

प्रो0 नन्दलाल सिंह स्मृति व्याख्यान

विज्ञान परिषद् प्रयाग की काशी हिन्दू विश्वविद्यालय शाखा के तत्वावधान में 'प्रो0 नन्दलाल सिंह स्मृति व्याख्यानमाला' का छठवाँ व्याख्यान काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग के बोस व्याख्यान कक्ष में पहली अगस्त 2002 गुरुवार को विश्वविद्यालय के जैव प्रौद्योगिकी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान प्रो0 ब्रह्मदेव सिंह द्वारा दिया गया जिसमें 'बायोटेक्नोलॉजी के नए आयाम' विषय पर रोचक ज्ञानवर्द्धक एवं अद्यतन जानकारी देते हुए प्रो0 सिंह ने अनेक क्षेत्रों में जीन तकनीकी के लाभप्रद उपयोगों की चर्चा की। इस संदर्भ में उन्होंने गेहूँ और चावल की नई किस्मों के विकास एवं रोगोपचार में इस तकनीकी के प्रयोग की जानकारी दी। उन्होंने बताया कि हाल ही में धान (चावल) की एक ऐसी किस्म विकसित की है जिसमें विटामिन 'ए' भी उपलब्ध है। इस आयोजन की अध्यक्षता विज्ञान संकाय के प्रमुख प्रो0 एस.एन. लाल ने की तथा भौतिकी विभाग के अवकाश प्राप्त प्रोफेसर महाराज नारायण मेहरोत्रा मुख्य अतिथि रहे। आरंभ में भौतिकी विभाग के अध्यक्ष प्रो0 यशवन्त सिंह ने विज्ञान परिषद प्रयाग से आए प्रधानमंत्री शिवगोपाल मिश्र, मुख्य अतिथि प्रो0 मेहरोत्रा, व्याख्याता प्रो0 ब्रह्मदेव सिंह तथा कार्यक्रम में उपस्थित लोगों का स्वागत किया और अंत में शाखा परिषद् के अध्यक्ष प्रो0 ब्रजरतन दास गुप्त ने सबको धन्यवाद ज्ञापित किया। कार्यक्रम का संचालन डॉ0 श्रवण कुमार तिवारी ने किया।

प्रो0 महाराज नारायण मेहरोत्रा का सम्मान

इसी अवसर पर भौतिकी विभाग (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) के अवकाश प्राप्त प्राध्यपाक प्रो0 महाराज नारायण मेहरोत्रा का सम्मान किया गया। प्रो0 मेहरोत्रा को हाल ही में केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा द्वारा हिन्दी में विज्ञान लेखन के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिए डॉ0 आत्माराम पुरस्कार प्रदान किया गया है। समारोह में विज्ञान परिषद् प्रयाग के प्रधानमंत्री प्रो0 शिवगोपाल मिश्र ने माल्यार्पण करके तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय विज्ञान संकाय के संकाय प्रमुख प्रो0 एस.एस. लाल ने अपने उद्गार प्रकट करते हुए, प्रो0 मेहरोत्रा ने प्रो0 नन्दलाल सिंह को अपना शिक्षा गुरु एवं अभिभावक मानते हुए, अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

– डॉ0 श्रवण कुमार तिवारी
बी2/228, भदैनी, वाराणसी

पृष्ठ 31 का शेष

दबाव जैसी समस्याओं का डिजिटल पुस्तकालय को बार बार सामना करना पड़ सकता है।

विश्व व भारत में अभी इस तरह की सुविधाएँ उपलब्ध कराने के लिए पर्याप्त संख्या में विशेषज्ञ व जानकार लोग उपलब्ध नहीं हैं। विदेशों में, जो थोड़े बहुत विशेषज्ञ व पेशेवर लोग इस क्षेत्र में हैं, उन्हें कम शुल्क और तकनीक व टेक्नोलॉजी के आयात व निर्यात में दिलचस्पी लेते हुए आगे आना होगा। साथ ही लोगों को भी नई प्रौद्योगिकी को अपनाने के लिए बढ़ चढ़कर भाग लेना ही होगा तभी डिजिटल पुस्तकालय की स्थापना व विकास में आ रही बाधाओं को दूर किया जा सकता है।

सम्भावनाएँ

पश्चिमी देशों ने 1995 से ही डिजिटल पुस्तकालय की स्थापना कर इस कार्य का श्री गणेश कर दिया है। वेटिकन शहर के पुस्तकालय में विश्व की सबसे प्राचीनतम दुर्लभ पुस्तकों और पांडुलिपियों का अनोखा संग्रह है। इसमें दांते, अरस्तू, यूक्लिड, होमर और वर्जिल की पुस्तकों की मूल प्रतियाँ भी शामिल है। किन्तु रोम की प्राचीन पुस्तकालय का फायदा कुछ ही विद्वान उठा पाते हैं। इसका लाभ सर्वसुलभ कराने हेतु 1995 में वेटिकन पुस्तकालय के अधिकारी, अमेरिकी कम्प्यूटर कंपनी आई बी एम के अनुसंधानकर्ता, रिओ डी जेनिरो के कैथोलिक विश्वविद्यालय के विद्वान और केस वेस्टर्न यूनिवर्सिटी के एक दल के विद्वानों ने आन लाइन डिजिटल लाइब्रेरी सुविधाएँ उपलब्ध कराने की संभावनाओं के बारे में जाँच पड़ताल की तथा पुस्तकालय म

उपलब्ध पांडुलिपियों को डिजिटल रूप में परिवर्तित करके इंटरनेट पर उपलब्ध कराया गया। उदाहरण के लिए अमेरिका की नेशनल गैलरी आफ आर्ट्स के पास कलाकृतियों का विशाल संग्रह था। 1990 में आईबीएम ने इस संग्रहालय की कलाकृतियों को डिजिटल रूप में परिवर्तित कर संग्रहीत करने का कार्य हाथ में लिया। यह कार्य सफलतापूर्वक सम्पादित करके आम आदमी की वेबसाइट के जरिए इस संग्रह को देखने की सुविधा भी उपलब्ध कराई गई। इस वेबसाइट पर दुनिया की कुछ सबसे खूबसूरत कलाकृतियों की डिजिटल छवियाँ आन लाइन उपलब्ध हैं। केवल पुस्तकालयों/सूचना केन्द्रों ने ही डिजिटाइजेशन के क्षेत्र में प्रगति नहीं की है अपितु विकसित देशों में ऐसे अनेक पुस्तकालय हैं जिनमें उपलब्ध सामग्री में से काफी बड़े हिस्से को डिजिटल रूप में बदला जा चुका है।

भारत ने भी सूचना टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में काफी प्रगति की है। विश्व में सबसे अधिक कुशल सूचना टेक्नोलॉजी विशेषज्ञ देने का गौरव भारत को प्राप्त है। अमेरिका, जापान, फ्रांस, जर्मनी आज भी भारतीय कम्प्यूटर विशेषज्ञों को अपने यहाँ बुलाने के लिए भारत पर निगाह गड़ाए रहते हैं। भारत के पुस्तकालय विज्ञान विशेषज्ञों ने भी कम्प्यूटरीकरण कर डाला है या इस दिशा में प्रयासरत हैं। हमारे देश में बड़ी मात्रा में सामग्री पुस्तकालयों, निजी संग्रहों, मौखिक व शिष्य परम्परा के लोगों, पुरातात्विक, अभियान निष्कर्षों गुफाचित्रों, म्यूजियमों आदि में इधर उधर बिखरी पड़ी हैं जिनमें बहुत सी सामग्री के टूट फूट जाने, नष्ट होने, खोने व चोरी चले जाने का भय बना हुआ है। इन दुर्लभ संग्रहों को हम डिजिटल रूप देकर सुरक्षित रख सकते हैं। इससे देश की सामाजिक संस्कृति और धरोहर के संरक्षण में मदद मिल सकती है। जहाँ तक शैक्षणिक संस्थाओं का सवाल है– हैदराबाद के केन्द्रीय विश्वविद्यालय में देश की पहली डिजिटल पुस्तकालय की स्थापना की जा रही है जो देश में अपनी तरह की पहली लाइब्रेरी होने का गौरव प्राप्त करेगी। विश्वविद्यालय में शोध ग्रन्थों/शोध प्रबंधों और लेखों के संग्रह को डिजिटल रूप देने का कार्य प्रारम्भ कर दिया गया है। इससे एक लाभ इन शोध छात्रों को होगा, जो विश्व के किसी भी कोने में बैठकर अपने महत्वपूर्ण विषय पर शोध कार्य अपने कम्पयूटर के माध्यम से आसानी से पूरा करने में सक्षम होंगे। जरूरत है डिजिटल पुस्तकालय का विकास और तीव्र गति से भारत में बढ़ाए जाने की, जिससे अधिक से अधिक लोग लाभ उठा सकें।

विज्ञान परिषद् प्रयाग

पुस्तक

(1)

पुस्तक : फिजिओलॉजी ऑफ विजन (नेत्र क्रिया विज्ञान)
मूल लेखक : डॉ0 चन्द्रशेखर वेंकट रमन
अनुवादक : डॉ0 डी.के. राय
प्रकाशक : बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना
वर्ष : 2001 **पृष्ठ संख्या** : 170 **मूल्य** : 95.00

यह पुस्तक डॉ0 रमन की पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। मजेदार बात यह है कि मूल शीर्षक को हिन्दी में प्रतिलिपित कर दिया गया है और उसका हिन्दी रूप 'नेत्र क्रिया विज्ञान' को छोटे अक्षरों में दिया गया है।

पुस्तक के अनुवादक बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग के प्रोफेसर डॉ0 देवेन्द्र कुमार राय हैं। उन्होंने नोबेल पुरस्कार विजेता की पुस्तक का हिन्दी अनुवाद करके हिन्दी पाठकों के लिए बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की है। इस पुस्तक में कुल 24 अध्याय हैं।

प्रारम्भ में डॉ0 राय ने रमन की बहुत ही वैदुष्यपूर्ण जीवनी दे दी है।

अनुवाद की भाषा सरल तथा स्वीकृत पारिभाषिक शब्दों को लेकर चली है। यत्रतत्र अंग्रेजी पर्याय भी दे दिए गए हैं। यदि पुस्तक के अंत में कठिन पारिभाषिक शब्दों के अंग्रेजी पर्याय भी दे दिए जाते तो संशयात्मक अनूदित अंशों का समाधान हो सकता था।

बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी ने ऐसी महत्वपूर्ण पुस्तक का हिन्दी अनुवाद कराकर बहुत बड़ा उपकार किया है। बस एक ही बात खलती है। श्री अमर कुमार सिंह ने पुस्तक के अन्तिम कवर पर जो लेखक परिचय दिया है उसमें रमन को रमण लिखा है और उनका निधन काल 1971 दिया है जबकि डॉ0 राय ने पुस्तक के प्रारम्भ में 1970 दिया है।

(2)

पुस्तक : पादप प्रजनन
लेखक : प्रो0 बी.डी. सिंह
प्रकाशक : कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना, नई दिल्ली, नोएडा **चतुर्थ संस्करण** : 2002
पृष्ठ संख्या : 545 **मूल्य** : 175.00

यह पुस्तक ऐसे विषयविशेषज्ञ द्वारा लिखी गई है जिसे स्नातकोत्तर कक्षाओं में अध्यापन करने के अतिरिक्त जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में शोध कार्य करने का अवसर प्राप्त है। इसमें सन्देह नहीं कि अनुभवी अध्यापक द्वारा लिखित यह पुस्तक छात्रों, शोधार्थियों तथा किसानों के लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध होगी।

यह पुस्तक का संशोधित संस्करण है अतः इसके अनेक अध्यायों में काफी संवर्धन हुआ है और पाँच नए अध्याय भी जोड़े गए हैं। इस तरह यह पुस्तक नई जानकारी प्रस्तुत करने में सक्षम है।

पुस्तक के अन्त में दिए गए परिशिष्ट महत्वपूर्ण हैं और सबसे महत्वपूर्ण है पारिभाषिक शब्दावली। यह तो इस पुस्तक का प्राण है। लेखक ने ऐसी सटीक परिभाषाएँ 24 पृष्ठों में दी हैं। साथ में अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दावली भी है।

प्रो0 सिंह ने हिन्दी के जिस सहज रूप का इस पुस्तक में प्रयोग किया है वह प्रशंसनीय है। यथा स्थान आरेख भी दिए गए हैं। उन्होंने हिन्दी के साथ साथ अंग्रेजी शब्दों को व्यवहृत करने का जो साहस दिखाया है वह एक तरह से प्रस्तुतीकरण की दिशा में साहसिक कदम है। यद्यपि मैं इसका समर्थक नहीं हूँ किन्तु अंग्रेजी के छात्रों को हिन्दी सिखाने का यह सर्वश्रेष्ठ प्रयास है।

सम्भवतः पादप प्रजनन पर यह अपनी किस्म की पहली पुस्तक है। लेखक को अनेकानेक बधाइयाँ!

◈ डॉ0 शिवगोपाल मिश्र

बायोटेक्नोलॉजी विभाग, भारत सरकार ने जैव प्रौद्योगिकी से संबद्ध विषयों पर हिन्दी में मूल रूप से पुस्तक लेखन को बढ़ावा देने के लिए लेखकों को नकद पुरस्कार देने के लिए एक योजना आरम्भ करने का निर्णय किया है। इस योजना की मुख्य–मुख्य बातें निम्न प्रकार हैं :–

योजना का नाम

इस योजना का नाम 'बायोटेक हिन्दी ग्रन्थ लेखन पुरस्कार योजना' होगा।

योजना का उद्देश्य

मूल रूप से पुस्तकों के लेखन को प्रोत्साहित करना है।

पुरस्कार की राशि

इस योजना के अधीन हिन्दी में मूल पुस्तकों के लिए निम्नलिखित पुरस्कार दिए जाएंगे

प्रथम पुरस्कार	:	रु0 40,000/–
द्वितीय पुरस्कार	:	रु0 30,000/–
तृतीय पुरस्कार	:	रु0 20,000/–

मुख्य विशेषताएँ

- इस योजना का संचालन बायोटेक्नोलॉजी विभाग द्वारा किया जाएगा।
- पुरस्कार वर्ष 2002 से आरंभ होंगे और प्रत्येक कलेण्डर वर्ष के लिए दिए जाएंगे। बायोटेक्नोलॉजी विभाग पुरस्कारों के लिए लेखकों के आवेदन–पत्र हिन्दी और अंग्रेजी के प्रमुख समाचारपत्रों/पत्रिकाओं में विज्ञान प्रकाशित करके आमंत्रित करेगा।
- लेखक अपने आवेदन निर्धारिम फार्म में भरकर संयुक्त सचिव (प्रशासन), बायोटेक्नोलॉजी विभाग, ब्लाक–2, सी जी ओ काम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली–110003 को भेजेंगे। लेखकों द्वारा अपने आवेदन–पत्रों के साथ पुस्तकों की चार प्रतियां भेजनी होंगी।
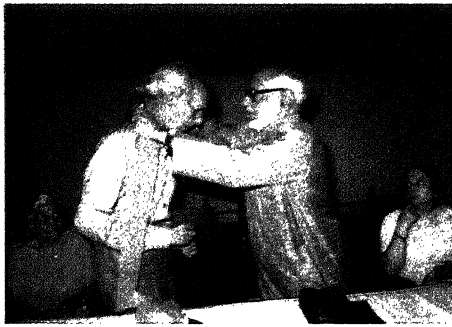
प्रो. देवेन्द्र शर्मा को सम्मानित करते हुए
प्रो. एम.जी.के. मेनन
साथ में श्रीमती महिमा शर्मा
एवं श्रीमती मंजु शर्मा
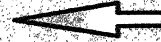
'विज्ञान' के डॉ. देवेन्द्र शर्मा सम्मान अंक
का लोकार्पण करते हुए
प्रो. एम.जी.के. मेनन

'स्वतन्त्रता परवर्ती विज्ञान लेखन'
पुस्तक का विमोचन करते हुए
डॉ. एस.के. जोशी
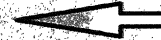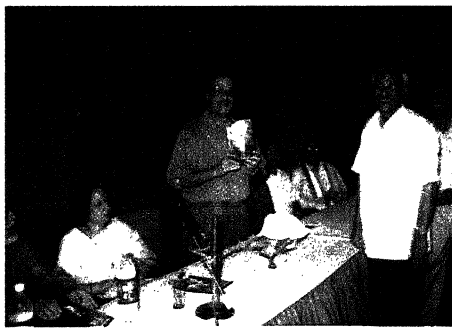
'विज्ञान' एकेडमी में
डॉ. हरिमोहन स्मृति व्याख्यान
देते हुए प्रो. एम.जी.के. मेनन